ाम अमर साहित्य

कालिदास के काव्य

लेखक—
जगदीश दीक्षित "आनन्द"

प्रकाशक—
राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट, दिल्ली—६

प्रकाशक—
राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट, दिल्ली ।

मूल्य
सवा रुपया

मुद्रक—
कौरोनेशन प्रिंटिंग वर्क्स,
फतेहपुरी, दिल्ली ।

कालिदास और उनकी रचनाएँ—

महाकवि कालिदास की कृतियां अब केवल भारत की ही नहीं अपितु विश्व की निधि बन चुकी हैं। भारत को ऐसे कवि की लेखनी पर गर्व है। कवि कालिदास की प्रत्येक रचना इतनी मनोरंजक और कलात्मक है कि कोई भी देश, कोई भी भाषा कवि की कृतियों से अपना साहित्य अछूता न रख सकी। कई भाषाओं पर तो कवि की कला-कृतियों की अमिट छाप है। शेष भाषाएं कवि की कृतियों को अनुवाद रूप में ही पाकर सन्तुष्ट हो गईं। जहाँ ख्याति का विषय है, कवि के पश्चात् लोग उसकी कला से इतने प्रभावित हो गए थे कि उन्होंने अपने नाम तक एकरुपता के लोभ से कालिदास ही रखने प्रारम्भ कर दिए थे। आज भी हम सर्वश्रेष्ठ कवि शेक्सपीयर के साथ ही इस कवि का आदर करते हैं।

कवि के काव्य हैं—रघुवंश, कुमारसम्भव, मेघदूत और ऋतुसंहार। कालिदास के काव्यग्रंथ संस्कृत भाषा में हैं। अतः केवल हिन्दी जानने वाला उसका रसास्वादन नहीं कर सकता, प्रत्युत क्लिष्ट समझ कर उसे छोड़ देता है। इस प्रस्तुत ग्रन्थ से हमारा अभिप्राय केवल पाठकों की संस्कृत-साहित्य के प्रति रुचि उत्पन्न करना और संस्कृत साहित्य का परिचय कराना मात्र है।

कालिदास की रचना ऋतुसंहार केवल प्रकृति वर्णन मात्र है। कुछ विद्वानों को तो उसके कालिदासकृत होने से भी सन्देह है। अतः हमने उससे किसी विशेष लाभ की आशा न पा, इस पुस्तक में उसका सारांश नहीं लिया है। इसमें केवल तीन काव्य संग्रहीत हैं, रघुवंश, कुमारसम्भव और मेघदूत।

आशा है कालिदास के काव्यों का परिचय इस पुस्तक में पूर्णरूप से मिल सकेगा और यही सफलता मेरा ध्येय है।

—लेखक

विषय-सूची

रघुवंश

: १ :

आज से सहस्रों वर्ष पूर्व भारतवर्ष में दिलीप नाम का राजा राज्य करता था। अयोध्या उसकी राजधानी थी। वह बड़ा पराक्रमी था। उसके शत्रु उसके नाम से ही कांपते थे।

राजा दिलीप की रानी का नाम सुदक्षिणा था। सुदक्षिणा पतिव्रता थी। पति की सेवा करना ही उसका एकमात्र धर्म था। राजा दिलीप को संसार के सारे सुख प्राप्त थे, पर सन्तान न होने के कारण वे सब उसे फीके लगते थे।

एक दिन सन्तान पाने के लिए अनुष्ठान करने के विचार से राजा दिलीप अपने कुलगुरु वसिष्ठ जी के आश्रम में गए! उनके साथ में रानी सुदक्षिणा भी थी। ऋषि वसिष्ठ ने राजा-रानी का स्वागत किया और फिर आशीर्वाद देकर आने का कारण पूछा। राजा दिलीप ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—

महामुनि! आप से क्या छिपा है! आप समर्थ हैं। योगबल से हमारे हृदय की बात कहने से पहले

ही जान लेते हैं। महाराज, संसार का ऐसा कोई सुख नहीं जो मुझे आपकी कृपा से प्राप्त न हो, पर सन्तान न होने पर मुझे ऐसी आशंका होती है कि अब हमारा वंश ही न चल सकेगा। मुनिवर ! कोई ऐसा उपाय बतायें, जिससे हमारे वंश की डूबती हुई नौका फिर से तैरने लग जाये !

वसिष्ठ जी ने ध्यान लगाया। कुछ देर एकाग्रचित्त बैठने के उपरान्त वे बोले—

राजन्, सन्तान न होने का भी एक कारण है। तुम्हें वह स्मरण नहीं। आज से कई वर्ष पूर्व तुम देवासुर संग्राम में विजयी होकर स्वर्ग से लौट रहे थे। देवता आकाश में दुन्दुभि बजाकर तुम्हारा स्वागत कर रहे थे। उस समय तुम्हारे मार्ग में सुरभि विराजमान थी। तुम्हारा उसकी ओर ध्यान न गया, पर उसने तुम्हें देख लिया। राजन् ! उस समय तुमने कामधेनु को प्रणाम नहीं किया। अतः क्रुद्ध होकर उसने तुम्हें निःसन्तान होने का शाप दे दिया ! सुरवाद्यों के उस कोलाहल में तुम कामधेनु का शाप न सुन सके।

वसिष्ठ जी के मुख से उपरोक्त वृत्तान्त सुनकर राजा दिलीप चिन्तित हो गए। परन्तु उन्हें सान्त्वना देते हुए मुनि बोले—

राजन् ! इसमें चिन्ता की कोई बात नहीं। सुरभि इस समय पाताल लोक में है। पर उसकी पुत्री नन्दिनी इस समय भी मेरे आश्रम में विराजमान है। तुम मेरे कहे अनुसार उसकी ही सेवा करो वह तुम्हें अवश्य सन्तान देगी।

ऋषि वसिष्ठ ने राजा को नन्दिनी की सेवा की विधि समझा दी। अगले दिन प्रातःकाल से राजा-रानी उसकी सेवा में लग गए ! प्रातः सूर्योदय के समय रानी पूजा के लिए थाल सजाकर लाई और राजा दिलीप ने भक्तिभाव से नन्दिनी की पूजा की। उसके बाद ऋषि की आज्ञानुसार राजा उसके पीछे-पीछे ही चल दिया। जिस दिशा में नन्दिनी जाती, पीछे-पीछे राजा भी जाता। जब वह बैठती, राजा बैठ जाता; जब वह खड़ी होती, राजा भी खड़ा हो जाता। नन्दिनी पानी पीती तो राजा पानी पीता; अन्यथा प्यासा ही रहता। उसके खड़े हो जाने पर राजा भी खड़ा हो जाता। सायं समय राजा अपने हाथों कोमल घास तोड़कर लाता और उसे खिलाता। खुजली मिटाने के लिए वह उसके वदन पर हाथ फेरता। प्रातः-सायं आश्रम से जाते समय और आश्रम में आते समय

सुदक्षिणा द्वार पर उपस्थित रहती और गौ की पूजा करती।

नन्दिनी की इसी प्रकार तन, मन से सेवा करते हुए राजा-रानी को इक्कीस दिन व्यतीत हो गए। उनको इस प्रकार भक्तिभाव से सेवा में दत्तचित्त देखकर नन्दिनी ने उनकी परीक्षा लेने का विचार किया। अगले दिन वह हिमालय के वन में जाकर घूमने लगीं। हिमालय पर हिंसक पशुओं की आशंका नहीं होती, अत: राजा गौ की रक्षा से कुछ निश्चिन्त-सा होकर हिमालय का प्राकृतिक सौन्दर्य देखने लगा। तभी उसने हृदय को कंपा देने वाली सिंहगर्जना सुनी। चौंककर उसने नन्दिनी की ओर देखा तो वह हक्का-बक्का रह गया। एक भयानक सिंह नन्दिनी की पीठ पर अपना हाथ रखे उसे खाने के लिए प्रस्तुत था। गौ की रक्षा के विचार से राजा ने तत्क्षण अपना धनुष सम्हाला और तरकस से बाण निकालने लगा! सिंह ने राजा की ओर देखा और राजा की विचित्र स्थिति हो गई। उसकी सीधी भुजा, जिससे वह बाण निकाल रहा था, निर्जीव-सी हो कर जहाँ की तहाँ स्थिर होगई। राजा विवश होगया। उसका हाथ हिलने में भी समर्थ न रहा। अपनी इस

अकर्मण्यता पर राजा खीज उठा। तभी सिंह बोला—

राजन्! तुम बाण चलाने का व्यर्थ प्रयास न करो! मैं देवाधिदेव महाराज शंकर का सेवक हूँ। मेरा नाम कुम्भोदर है। मुझे महादेव जी ने इस वन की रक्षा के लिए नियुक्त किया है। साथ ही उनकी आज्ञा है कि इस वन में आने वाले किसी भी प्राणी का मैं भोजन कर सकता हूँ। मुझे मारने में तुम कदापि सफल न हो सकोगे। अत: मेरे इस भोजन को मेरे ही लिए छोड़कर सकुशल वापस चले जाओ।

राजा दिलीप ने उत्तर दिया—हे सिंह! मेरे ऊपर इस मुनि की गौ की रक्षा का भार है। मैं क्षत्रिय हूँ। क्षत्रिय का धर्म है कि वह प्राण देकर भी अपने वचन व उत्तरदायित्व को निभाये। अत: मैं तुम से प्रार्थना करता हूँ कि इस निरपराध गौ को छोड़ दो। हाँ, यदि तुम्हें भूख अधिक लगी है तो तुम मुझे ही खालो। ऐसा होने पर मैं अपने वचन की रक्षा आसानी से कर सकूँगा!

राजा के ये वचन सुनकर सिंह ठहाका मारकर हँसा। फिर बोला—राजन्! मैं समझता था कि भूमि पर राज्य करने वाले समस्त राजाओं में तुम सबसे

अधिक बुद्धिमान हो। पर आज तुम्हारे वचन सुनकर मुझे विश्वास होगया है कि तुम महामूर्ख हो। कुछ तो सोचो। तुम्हारा एकछत्र राज्य है, तुम्हारी अभी नई आयु है, कितना मनोहर तुम्हारा सौन्दर्य है? तुम इन सब अलभ्य की चिन्ता न करके केवल एक गौ के लिए सब का बलिदान देना चाहते हो। मूर्ख! अपने प्राण गवाँकर इस समय तुम गौ की तो रक्षा कर लोगे, पर यह न भूलो कि जीवित रहकर तुम इन जैसे न जाने कितने प्राणियों की पालना करोगे। इस थोड़े से पुण्य के लोभ में तुम उस अपार पुण्य को ठुकरा रहे हो!

दिलीप इस पर भी नहीं माना। तब उसका दृढ़ निश्चय देखकर सिंह ने गौ को छोड़ दिया और राजा से अपना शरीर देने को कहा। सत्यप्रतिज्ञ राजा सिर झुकाकर सिंह के सामने बैठ गया। कुछ समय सिंह के प्रहार की प्रतीक्षा में बैठे रहने बाद राजा ने अपना सिर उठाया। उसके आश्चर्य की सीमा न रही। वहाँ केवल नन्दिनी खड़ी थी और सिंह का कोई चिन्ह भी न था। आश्चर्य से राजा आँखें मलने लगा कि गौ बोली—

पुत्र! उठो! आज तुम परीक्षा में सफल हुए। तुम्हारे गुणों से मैं प्रसन्न हूँ। बोलो क्या वर मांगते हो?

राजा ने सन्तान की अभिलाषा प्रगट की। नन्दिनी ने राजा को सन्तान-प्राप्ति का वर दिया। आश्रम पहुँच कर राजा को कुछ कहना भी नहीं पड़ा। सुदक्षिणा उसकी प्रसन्न आकृति को देखते ही राजा के भावों को जान गई।

नन्दिनी और वसिष्ठ जी से आशीर्वाद लेकर राजा-रानी अपनी राजधानी को लौट आये।

: २ :

समय पर नन्दिनी का आशीर्वाद सफल हुआ। दिलीप को एक पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। पण्डितों ने उसका नाम रघु रखा। दिलीप ने सब प्रकार से रघु को योग्य बनाने के विचार से उसकी शिक्षा-दीक्षा की समुचित व्यवस्था कर दी। धीरे-धीरे रघु के सद्गुणों की सुगन्धि चारों ओर फैलने लगी।

राजा दिलीप सौ अश्वमेध-यज्ञ पूर्ण करना चाहते थे। उन्होंने निन्यानवे पूर्ण कर लिये थे। अन्तिम यज्ञ भी उन्होंने प्रारम्भ कर दिया और उसके अश्व की रक्षा का भार राजकुमार रघु को सौंप दिया। रघु अश्व के पीछे-पीछे चारों दिशाओं में गया। राजा दिलीप और रघु

के प्रताप से किसी भी राजा का साहस न हुआ जो वह अश्व पकड़कर उनका सामना करता। अश्व की रक्षा करते हुए सकुशल जब रघु लौटने का विचार कर रहा था तो देवराज इन्द्र ने छिपकर अश्व चुरा लिया। इन्द्र को अश्व चुरा कर ले जाते देखकर रघु को क्रोध आया। वे इन्द्र को सम्बोधित करके बोले—

देवराज इन्द्र! आप इस भूलोक तथा स्वर्गलोक, दोनों के अधिपति हैं। हम जो भी पुण्यकार्य करते हैं उसमें आपका भाग अवश्य रहता है। पर फिर भी यज्ञों में इसप्रकार विघ्न डालना आप जैसे महानुभाव को शोभा नहीं देता।

इस पर भी इन्द्र ने अश्व वापस देने से मना किया। वह बोला—आप लोग इस प्रकार सौ यज्ञ पूर्ण करके इन्द्रासन लेना चाहते हैं। मैं इन्द्रासन पर किसी को भी नहीं बैठने दे सकता।

इस पर बात बढ़ चली। रघु ने कहा—यदि ऐसी बात ही है तो तुम युद्ध करके और मुझे परास्त करके ही अश्व ले जा सकते हो।

रघु और इन्द्र में, मनुष्य और देवताओं के राजा में, युद्ध हुआ। रघु का पराक्रम अतुल था। देखते ही

देखते देवराज विचलित होगए। रघु ने उनकी अंगुलियों पर घाव कर दिए थे। उनके रथ की ध्वजा काट दी थी और साथ ही धनुष की प्रत्यंचा भी। विवश होकर इन्द्र ने अपना वज्र उठा लिया। बड़े वेग से उसने वृत्रासुर के प्राण लेनेवाला वज्र रघु पर मारा। वज्र रघु की छाती में लगा। क्षणभर के लिए रघु को मूर्छा आगई, पर पलक मारते ही वह उठखड़ा हुआ।

रघु के इस अतुल पराक्रम को देखकर इन्द्र को बड़ा विस्मय हुआ। प्रसन्न होकर उसने वरदान दिया कि बिना अश्व के ही तुम्हारा यज्ञ सफल माना जायगा।

समय पाकर राजा दिलीप ने वीर रघु को राज्य-सिंहासन सौंप दिया और स्वयं सुदक्षिणा को साथ लेकर वन में तपस्या करने को चले गए। राज्य-सिंहासन पर बैठते ही रघु ने अपने शत्रुओं पर विजय पाना प्रारम्भ कर दिया। उसने क्रमशः एक-एक करके समस्त राजाओं को जीता और भेंट में उनसे अपार धन प्राप्त किया। तदनन्तर राजा रघु ने विश्वजित नाम का यज्ञ किया। दूर-दूर से राजा-महाराजा अपनी-अपनी भेंटें लेकर यज्ञ में भाग लेने आए। दानी राजा रघु ने उस महायज्ञ में इतना अधिक दान दिया कि उसका राजकोष ही खाली

हो गया । अपने आभूषण और यहां तक कि पूजा के पात्र भी राजा ने ब्राह्मणों को दान में दे दिए । राजा रघु का यश भूलोक में ही नहीं, स्वर्गलोक में भी व्याप्त हो गया ।

एक दिन रघु पूजा कर रहा था । प्रतिहारी ने आकर सूचना दी कि कोई तपस्वी ब्रह्मचारी मिलना चाहता है । धर्मवीर राजा रघु ने उसे अपने पूजा भवन में ही बुला लिया । रघु ने ब्रह्मचारी का स्वागत किया और फिर उसका परिचय पूछा । वह ब्रह्मचारी बोला—

राजन् ! मेरा नाम कौत्स है । मैं आचार्य वरतन्तु का शिष्य हूँ । अपनी शिक्षा पूर्ण करके अभी-अभी आश्रम से सीधा आपके दर्शनों के लिए चला आ रहा हूँ ।

प्रजापालक राजा ने वरतन्तु ऋषि की और उनके आश्रम-वासियों की कुशलता के विषय में पूछा । उन्हें किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं है ? उनकी तपश्चर्या में कोई विघ्न तो नहीं पहुँचाता ? यहाँ तक कि राजा ने वर्षा आदि के विषय में भी पूछ लिया कि उनका क्रम-भंग कहीं ऋषि-जीवन में बाधक तो नहीं होता ? इन सब प्रश्नों का उत्तर पाने के बाद जब राजा रघु को सन्तोष हो गया तो उन्होंने कौत्स से उसके आने का

प्रयोजन पूछा । रघु के मिट्टी के पूजा-पात्रों को देखकर कौत्स पहले ही समझ गया था कि रघु के पास अब धन नहीं है । अपना सर्वस्व दान देकर यह दानवीर अब कहने भर का राजा रह गया है । अतः निराश होकर कौत्स बोला—

राजन् ! आपके पूजा के पात्रों को देखकर ही मैं आपकी आर्थिक स्थिति का आभास पा चुका हूँ । जल-रहित श्वेत शरत्कालीन मेघों को देखकर प्यासा चातक भी कभी जल नहीं माँगता । अब आप मेरी चिन्ता न करें । मैं किसी अन्य धनी के पास जाकर अपना मन्तव्य कहूँगा ।

इतना कहकर कौत्स चल दिया । पर राजा रघु ने उसे रोका और पूछा कि उसे कितना धन चाहिए । कौत्स ने उत्तर दिया—

राजन् ! वरतन्तु ऋषि ने मेरी बार-बार की प्रार्थना से चिढ़कर मेरी निर्धनता की ओर बिना ध्यान दिए ही मुझे गुरुदक्षिणा में चौदह करोड़ सुवर्ण मुद्राएँ देने को कहा है । उसी के लिए मैं आपके पास आया था ।

राजा ने कौत्स को अपनी यज्ञशाला में ठहरा दिया और फिर कुबेर पर चढ़ाई करने का निश्चय किया। परन्तु उसी रात कुबेर ने रघु के कोष में इतनी स्वर्ण-मुद्राएँ भर दीं कि देखने वालों को सुवर्ण-वर्षा का भ्रम हो गया। दानवीर रघु ने वह सारा का सारा धन कौत्स को ही देना चाहा, पर निर्लोभी कौत्स तो केवल उतना धन ही चाहता था जितना कि उसे गुरु को देना था। उस समय आवश्यकता से अधिक देने वाला रघु और आवश्यकता से अधिक न लेने वाला कौत्स, दोनों ही जनता के आदरणीय होगए। अन्त में रघु ने वह सारा धन कौत्स को ही सौंप दिया। प्रसन्नचित्त कौत्स ने रघु को पुत्रवान होने का आशीर्वाद दिया।

: ३ :

समय पर रघु को एक कान्तिवान पुत्र प्राप्त हुआ। रघु ने उसका नाम अज रखा। अज भी अपने पिता रघु की ही भांति पराक्रमी था। जब वह युवा हुआ तो पिता ने उसे विदर्भराज की बहिन इन्दुमती के स्वयम्वर में भेज दिया। अज अपनी सेना समेत वन में ठहरा हुआ था। अचानक नदी को पार करके एक मदमस्त जंगली हाथी अज के हाथियों में आ घुसा। उसने चारों ओर

मारना और पागल की तरह दौड़ना शुरू कर दिया। अज की सेना में त्राहि-त्राहि मच गई। घोड़े रथों को साथ लेकर इधर-उधर भागने लगे। सेवक-गण भी अपने-अपने प्राणों को लेकर भाग खड़े हुए। अज ने जब ऐसी अव्यवस्था देखी तो हाथी को वापस लौटाने के लिए उसने धीरे से एक बाण छोड़ दिया। बाण के लगते ही वह हाथी पृथ्वी पर गिर पड़ा और तत्क्षण एक गन्धर्व का रूप धारण करके प्रकट हो गया। उसने हाथ जोड़-कर अज से निवेदन किया—

राजकुमार ! मैं गन्धर्वपति श्री प्रियदर्शन का प्रियंवद नामका पुत्र हूँ। मुझे मतंग मुनि ने हाथी हो जाने का शाप दिया था। आज तुमने मुझे शाप से छुटकारा दिलाकर मेरा बड़ा ही उपकार किया है। अतः मैं तुम्हें अपना प्यारा सम्मोहनास्त्र देता हूँ। इसे छोड़ने से शत्रु को मूर्च्छा आ जाती है। इस तरह विजय भी हाथ लग जाती है और किसी की हिंसा भी नहीं होती।

अज ने प्रसन्न होकर सम्मोहनास्त्र ले लिया। जब प्रियंवद गन्धर्वदेश को चला गया तो अज भी प्रसन्न-चित्त हो विदर्भ देश की ओर बढ़ चला।

विदर्भराज की बहिन इन्दुमती ने अज के गले में माला पहना दी। अज की इस सफलता पर दूसरे राजा उससे चिढ़ गए और सब ने मिलकर मार्ग में ही अज को घेर लिया। अज को हराकर वे उससे इन्दुमती को छीन लेना चाहते थे। दोनों ओर से घनघोर युद्ध हुआ। पर सेना के कम होने के कारण अज को अपना पक्ष निर्बल दीखने लगा। तब उसने प्रियम्वद के दिए उस सम्मोहनास्त्र का प्रयोग कर दिया। देखते ही देखते समस्त राजा और उनके सैनिक भूमि पर मूर्च्छित होकर गिरने लगे।

अज ने सब राजाओं को पराजित करके अयोध्या की ओर प्रस्थान कर दिया। अज को अब सब भाँति सुयोग्य जानकर प्रतापी रघु ने राज-सिंहासन उसे सौंप दिया और स्वयं रानी को साथ लेकर वन में तपस्या करने चले गए।

राजकुमार अज ने सिंहासन पर बैठते ही अपने पिता की भाँति राजाओं का बलपूर्वक दमन किया। सारी पृथ्वी पर अपना अखण्ड साम्राज्य स्थापित करने के उपरान्त वह सुखपूर्वक राज्य करने लगा। उसके

राज्य में प्रजा सुखी थी। उसकी दया और न्यायप्रियता देखकर प्रजाजन राजा रघु को भी भूलने लगे थे।

एक दिन अज अपनी रानी इन्दुमती के साथ बाग में घूम रहा था। वसन्त ऋतु थी। चारों ओर प्रकृति की छटा अपने यौवन में मुस्करा रही थी। उस सुहावने समय में महामुनि नारद आकाश मार्ग से जा रहे थे। उनकी वीणा में एक पुष्पमाला लगी थी। अचानक वायु के वेगवान झोंकों से वह माला वीणा से छूटकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। नीचे अज और इन्दुमती उद्यान में विहार कर रहे थे। वह माला इन्दुमति को छाती पर गिरी। कोमलांगी इन्दुमति उस प्रहार को न सह कर वहीं गिर पड़ी और स्वर्गलोक को सिधार गई। इस असामयिक दुर्घटना से महाराज अज को महान् खेद हुआ। वे पागलों की भांति विलाप करने लगे। मन्त्री तथा दूसरे मित्रगणों ने बहुत समझाया। पर, किसी भी प्रकार वे अपनी प्रिय रानी इन्दुमति को न भुला सके। कुछ समय और वहाँ रहने पर जब उन्हें शान्ति न मिली तो अपने पुत्र दशरथ को राज्यभार सौंप कर राजा अज भी वन में तपस्या करने चले गए।

: ४

राजा दशरथ भी उस समय के माने हुए वीरों में से थे। उनका चक्रवर्ती राज्य था। दसों दिशाओं में उनका प्रताप सूर्य की भांति अनश्वर था। उनकी वीरता की धाक केवल भूलोक में ही नहीं, अपितु स्वर्ग लोक में भी थी। इसी कारण देवासुर-संग्राम के समय देवराज इन्द्र ने उन्हें देवताओं की सहायता करने के लिए आमन्त्रित किया। राजा दशरथ उनकी सहायता के लिए चल दिए। राजा दशरथ ने अपने प्राणों की भी चिन्ता न करके देवताओं की युद्ध में सहायता की। उस युद्ध में देवताओं की विजय हुई। चलते समय सब देवताओं ने राजा दशरथ को आशीर्वाद दिए। राजा दशरथ अयोध्या वापस आ गए।

दशरथ को शिकार खेलने का बहुत शौक था। एक दिन वे अपने साथियों को लेकर वन में शिकार खेलने गए। राजा को वहाँ एक अति सुन्दर मृग दिखाई दिया। राजा ने अपना घोड़ा उसी के पीछे छोड़ दिया। उस मृग के पीछे भागते-भागते दशरथ अपने साथियों से बिछुड़ गए। हरिण तो आँखों से ओझल हो गया।

तब राजा ने चारों ओर घूम फिर कर देखा, पास ही तमसा नदी बह रही थी।

श्रवण कुमार नाम का यह बालक अपने माता-पिता को तीर्थ यात्रा कराने ले जा रहा था। उसके वृद्ध माता-पिता नयनहीन थे। अतः उसने उन्हें बैंगी में बिठा रखा था। मार्ग में माता-पिता को प्यास लगी। उन्होंने श्रवण से जल लाने को कहा। श्रवण हाथ में घड़ा लेकर नर्मदा के तट पर गया, वहाँ जब वह पानी भर रहा था तब घड़े में पानी भरने की एक प्रकार की ध्वनि हुई। पास ही राजा दशरथ घूम रहे थे। उस ध्वनि को सुन कर उन्हें वहां किसी पशु का भ्रम हो गया।। बिना विचारे ही उन्होंने जिधर से ध्वनि आ रही थी, उसी ओर अपना शब्दभेदी बाण छोड़ दिया। बाण श्रवण की छाती में लगा। 'हाय' करके श्रवण तत्क्षण वहीं गिर पड़ा। किसी मनुष्य की हाय सुनकर राजा बड़े चिन्तित हुए। तत्क्षण वह उसी ओर गए। तमसा के तट पर एक ब्राह्मण पुत्र को अपने बाण से मरा देखकर उन्हें अत्यधिक शोक हुआ। उनसे पाप हो गया था। उस निरापराध की छाती से अपना बाण निकाल कर दशरथ ने उससे परिचय पूछा। उसने अपना नाम तथा अपने

माता-पिता के विषय में सब कुछ बता दिया। इसके बाद उसके प्राण-पंखेरू उड़ गए। राजा दशरथ ने घड़ा पानी से भरा और प्यासे श्रवण के अन्धे माता-पिता को जल पिलाने के लिए चल पड़ा। जब श्रवण के माता-पिता को अपने पुत्र की मृत्यु का समाचार मिला तो उन्हें महान् खेद हुआ। उन्होंने दशरथ को शाप दिया कि तू भी पुत्र वियोग में ही दुःखी होकर मरेगा। अशान्त चित्त राजा अपने राज्य को लौट आया।

राजा दशरथ के कोई भी सन्तान न थी। मुनि वसिष्ठ के कहने से उन्होंने एक पुत्रेष्टि यज्ञ किया। यज्ञ से प्रसन्न होकर अग्निदेव स्वयं प्रसाद लेकर उपस्थित हुए और उन्होंने वह प्रसाद राजा को दे दिया कि वह रानियों में बांट दिया जाय। राजा ने प्रसाद के भाग करके उसे रानियों में बाँट दिया। समय पाकर उसी यज्ञ-प्रसाद की अनुकम्पा से राजा के चार पुत्र उत्पन्न हुए। राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न। राजकुमारों के जन्म पर अयोध्या में भांति-भांति के उत्सव मनाए गए। महाराज दशरथ की प्रसन्नता की तो सीमा

Mohan Lal Khati

ही नहीं थी। वे सबको मुँह माँगा ईनाम दे रहे थे। उस दिन गरीबों को इतना दान दिया गया कि वे अमीर हो गए। जन-जन के हृदय में उल्लास की लहर-सी उछाले मारने लगी।

धीरे-धीरे राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न, चारों बड़े होने लगे। उनकी शिक्षा का राजा ने योग्य प्रबन्ध कर दिया। थोड़े ही दिनों में चारों भाई सब शास्त्रों में और समस्त शस्त्रास्त्र विद्या में निपुण हो गए।

एक दिन महाराज दशरथ अपनी राजसभा में बैठे थे कि महामुनि विश्वामित्र ने पदार्पण किया। मुनि का स्वागत करने के लिए राजा अपने आसन से खड़े हो गए। उचित अतिथि सत्कार के उपरान्त राजा ने जब विश्वामित्र जी से आज्ञा करने के लिए निवेदन किया तो विश्वामित्र बोले—

राजन्! आजकल मैं यज्ञ कर रहा हूँ। परन्तु मेरा यज्ञ दुष्ट राक्षसों के विघ्नों के कारण संपूर्ण नहीं हो पाता। आज मैं आपसे राम लक्ष्मण की भीख मांगने आया हूँ। आप अपने इन दोनों पुत्रों को मेरे साथ भेज दें। ये मेरे यज्ञ की रक्षा करेंगे।

विश्वामित्र के वचन सुनकर दशरथ बहुत चिन्तित हो गए। राम-लक्ष्मण अभी बालक ही थे। राक्षस तो महाभयंकर होते हैं। बड़े-बड़े देवताओं का बल उनकी माया के सामने निष्फल हो जाता है। बेचारे दुधमुँहे राम-लक्ष्मण किस प्रकार उनसे युद्ध कर सकेंगे। इस प्रकार बहुत सोच-विचार करने के उपरान्त राजा ने राम लक्ष्मण को वन भेजना स्वीकार न किया। परन्तु उस समय वहाँ ऋषि वसिष्ठ भी विराजमान थे। उन्होंने राजा दशरथ को समझाया और तब राजा ने राम-लक्ष्मण को विश्वामित्र के साथ वन भेज दिया। चलते समय पुत्र-वियोग के कारण राजा के आँसू बहते लगे जिनसे कि राम-लक्ष्मण के सिर के बाल भी गीले हो गए।

वन में स्थान-स्थान पर भांति-भांति के रंग-बिरंगे फूल खिले हुए थे। स्थान-स्थान पर मनोहर सरोवर थे, जिनमें सुन्दर कमल पुष्प खिल रहे थे। पक्षिओं के कलरव और जंगली हरिणों की चपलता के कारण वन की शोभा दुगनी होती जा रही थी। जिधर भी वे जाते मुनि की कृपा से आकाश के बादल उनके ऊपर अपनी छाया करते। मार्ग में मुनि उन्हें भांति-भांति की कथाएं

आँखों से संसार को भस्म करने की कामना वाले श्री परशुराम जी सामने आकर उपस्थित हो गए। उन्हें देखते ही दशरथ सेवकों को अतिथि पूजा का आदेश देने लगे। पर दशरथ की बातों की ओर बिना ध्यान दिए परशुराम राम के सामने खड़े हो गए और धनुष-बाण को सम्हालते हुए बोले—

राम! अभी तक राम शब्द केवल मेरे लिए ही प्रयुक्त होता था, पर अब तुम भी मेरे नाम के भागीदार पैदा हो गए हो। तुम्हें देखकर मुझे ऐसा लगता है मानो मेरा कोई प्रतिद्वन्द्वी उत्पन्न हो गया है। तुमने भगवान शंकर के धनुष को तोड़ कर मेरे गुरू का अपमान किया है। मैं उसके लिए तुम्हें दण्ड देना चाहता हूँ। पर फिर भी यदि तुम हाथ जोड़ कर मुझसे क्षमा मांग लो तो मैं तुम जैसे सुकुमार युवक को क्षमा कर सकता हूँ। अन्यथा यदि तुम्हें अपने पौरुष पर अधिक गर्व है तो तुम मेरे इस धनुष पर बाण चढ़ा कर ही दिखा दो।

रामचन्द्र ने परशुराम के इन वाक्यों का कोई
२ प्रत्युत्तर नहीं दिया। पहले तो उन्होंने सामने खड़े ब्राह्मण

को प्रणाम किया और फिर परशुराम जी के धनुष पर बाण चढ़ा दिया। तदनन्तर वे बोले—

हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ! मेरा चढ़ाया बाण कभी निष्फल नहीं जाता। तुम ब्राह्मण हो, तुम्हारी हत्या करना मेरा धर्म नहीं है। तुम दो बातों में से एक बात स्वीकार कर लो। कहो तो इस बाण से मैं तुम्हारी आकाश मार्ग की गति रोक दूँ या कहो तो तुम्हारे लिए स्वर्ग के द्वार बन्द कर दूँ।

जिस प्रकार पूर्णिमा की संध्या के समय चन्द्र की ज्योति बढ़ती जाती है और सूर्य का प्रकाश कम होता जाता है। उसी प्रकार रामचन्द्र जी की ज्योति उस समय बढ़ने लगी और परशुराम जी का प्रताप कम होने लगा। परशुराम ने हाथ जोड़ कर कहा—

भगवन् ! आप मेरे लिए स्वर्ग के द्वार चाहे बन्द कर दें, पर पुण्यतीर्थ की यात्रा करने के लिए मेरी आकाश मार्ग की गति की रक्षा करें।

राम ने बाण छोड़ दिया और परशुराम जी के लिए स्वर्ग के द्वार सदा के लिए बन्द हो गए। राम ने चलते समय परशुराम को नमस्कार किया और आशीर्वाद ग्रहण किया। परशुराम जी के चले जाने पर दशरथ ने

राम को गले लगा लिया। उन्हें उस समय ऐसा आभास हुआ मानो राम को नया जीवन प्राप्त हुआ हो।

जिस प्रकार मध्यान्ह के उपरान्त सूर्य का तेज कम होने लगता है उसी प्रकार राजा दशरथ को बुढ़ापे ने आ घेरा। उनके केश क्रमशः श्वेत होते गए और अंग शिथिल होने लगे। अपनी कुल-रीति का ध्यान करके वृद्धावस्था में वह भी वन में जाकर तपस्या का विचार करने लगे। इसके लिए उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को राज्यसिंहासन देने का विचार अपने मन्त्रिमण्डल के सम्मुख रखा। सबने महाराज के इस विचार से सहमति प्रकट की। महाराज ने प्रसन्न होकर उसी समय राम को राज्यसिंहासन देने की घोषणा कर दी। इस घोषणा के फलस्वरूप सारा नगर प्रसन्नता में सजाया जाने लगा। दान, पुण्य, यज्ञ, अनुष्ठान आदि प्रारम्भ होने लगे।

पर इस प्रसन्नता को कैकेई न सह सकी। वह रात भर रोती रही। अन्त में उसने राजा दशरथ से अपने दो वर माँग लिए। एक बार देवासुर युद्ध में कैकेई के पराक्रम से प्रसन्न होकर राजा दशरथ ने दो वर माँगने के लिए कैकेई को वचन दिया था। कैकेई के प्रथम वर

के अनुसार राम के स्थान पर भरत को राज्य और दूसरे वर के अनुसार राम को चौदह वर्षों के लिए वनवास की आज्ञा थी। राजा दशरथ को अपनी प्रतिज्ञा पालनी पड़ी और राम राजसिंहासन छोड़कर माता-पिता की आज्ञा सिर पर धारण कर वन को चले गए। सीता और लक्ष्मण भी उनके साथ थे।

राम, लक्ष्मण और सीता के वियोग में राजा दशरथ स्वर्ग सिधार गए। अब राजसिंहासन खाली हो गया। वैसे भी अशान्ति की आशा थी। साथ ही पिता दशरथ की मृत्यु के उपरान्त उनके किसी पुत्र का संस्कार आदि करने के लिए वहाँ उपस्थित रहना आवश्यक था। इन कारणों से मुनि वसिष्ठ ने भरत, शत्रुघ्न को ननिहाल से बुला भेजा। सब सभासदों ने भरत से राज्य स्वीकार कर लेने की प्रार्थना की, पर वे न माने। वह वन में राम के पास गए और उनसे अयोध्या वापस चलने की प्रार्थना की। पर जब वह इस पर राज़ी न हुए तो भरत उनकी पादुका साथ ले आए। भरत ने राम की पादुका सिंहासन पर रख दी और राज्यसंचालन करने लगे। भरत के चले जाने के बाद राम को सन्देह हो गया कि भरत बार-बार पंच-

वटी में आ जाया करेंगे और अयोध्या वापस ? वचन अनुरोध करेंगे। अतः उन्होंने चित्रकूट का परितारकर दिया और किसी दूसरी जगह कुटिया बनाने के वान् से आगे चल दिए। : में

मार्ग में राम-लक्ष्मण को विराध नाम का र ार मिला। वह उन तीनों का मार्ग रोककर खड़ा हो ग ाम फिर गर्जकर उसने सीता को उठा कर कन्धे पर ान लिया। क्रोध में आकर राम ने उसके एक बाण ार और वह दुष्ट उसे न सहकर सदा के लिए सो ग कुछ समय इसी प्रकार राक्षसों का वध करने के रों रामचन्द्र पंचवटी नाम के स्थान पर पहुँचे। ा उन्होंने पर्णकुटी बनाई और निवास करने लगे। ना

रावण की एक बहिन थी। शूर्पणखा उसका ा। था। राम-लक्ष्मण को देखकर वह उन पर मोहि ण गई और राम से विवाह कर लेने के लिए अनुनय-वि करने लगी। जब राम और लक्ष्मण दोनों ने रा विवाह करना स्वीकार न किया तो वह क्रोध में भ न सीता जी पर झपटी। उसके इस दुर्व्यवहार से क्रु के होकर राम ने लक्ष्मण को संकेत किया और नों- सूर्पणखा की नाक काट ली। ाम

पनी नाक कटी देखकर सूर्पणखा को महान् ग्लानि
के अनुर ह अपने भाई खर-दूषण के पास गई और उनको
दूसरे व अपमान का बदला लेने के लिए उकसाया । बहिन
वनवार अपमान न सहकर खर-दूषण बड़ी भारी सेना लेकर
पाल -लक्ष्मण पर चढ़ आए । राम ने सीता की रक्षा का
की श लक्ष्मण पर सौंपा और स्वयं अकेले उन सब
और सों से लड़ने लगे । देखते ही देखते जंगल नरमुण्डों
र गया । पृथ्वी रक्त के कारण फिसलनी हो गई ।
दशर ने खर-दूषण समेत उन सब राक्षसों को पृथ्वी पर
हो ग की नींद सुला दिया ।
पिता

संस्क खर-दूषण के मारे जाने पर सूर्पणखा रावण के
आवश गई । वहाँ भी उसने अपने अपमान और खर-दूषण
शत्रुघ्न यु की घटना रो रोकर कह सुनाई । रावण ने
भरत से उसकी बातें सुनीं और फिर उसे बदला लेने का
न मा वासन देकर वापस कर दिया ।

अयो बहुत विचार करने के बाद रावण छल से राम की
इस प सीता को हर लाया । राम सीता के वियोग में
आए होकर वन-वन उसे खोजते फिरे । वहाँ उनकी
और न नाम के वीर ने वानरों के राजा सुग्रीव से भेंट
बाद र

कराई । सुग्रीव ने राम की सहायता करने का वचन दिया । राम ने उसके अन्यायी भाई बालि को मारकर सुग्रीव को अभय-दान दिया । सुग्रीव ने भी अपने बलवान् वानरों को सीता की खोज के लिए चारों दिशाओं में भेज दिया । वीर हनुमान ने सीता जी का समाचार श्री राम को सुनाया और सीता जी की मुद्रिका राम को दी । उस मुद्रिका को देखकर राम को ऐसा भान हुआ मानो सीता जी का प्रेमपूर्ण हृदय संक्षिप्त होकर उनके सामने उपस्थित हो गया है ।

श्री राम ने समुद्र का पुल बाँधा । तदुपरान्त वानरों ने रावण की लंका को ऐसा घेर लिया कि लगता था मानो किले के चारों ओर उन्होंने एक दीवार और बना दी है । राम और रावण की सेना में भयंकर युद्ध हुआ । रावण के सब सेनापति क्रमशः युद्ध में मारे गए । रावण का पुत्र मेघनाद, इन्द्र पर विजय पाने के कारण जिसका नाम इन्द्रजीत भी पड़ गया था, लक्ष्मण के हाथों मारा गया । राम ने कुम्भकरण को और तत्पश्चात् त्रिभुवन विजयी रावण को भी मार गिराया । लंका विजय के बाद राम ने अपने प्रियमित्र तथा प्रमुख सहायक विभीषण को लंका का राज्य सौंप दिया । तत्पश्चात् राम

पुष्पक विमान पर बैठकर वापस अयोध्या लौट गए। तीनों माताओं ने सहर्ष गद्गद् होकर राम-लक्ष्मण और सीता का स्वागत किया। क्रमशः राम ने सब माताओं के चरण छुए। भरत को उन्होंने सप्रेम गले लगा लिया।

राजा राम का राज्याभिषेक हुआ। देश-देशान्तरों से ऋषि-मुनि उस उत्सव की शोभा बढ़ाने को पधारे। राम के राज्याभिषेक के समय देवताओं ने दुन्दुभि बजाकर और स्वर्गीय पुष्प बरसाकर अपना हर्ष प्रकट किया। राज्याभिषेक के बाद राम की न्यायप्रियता और दयालुता से प्रजा उनके गुण गाने लगी। पुष्प की सुगन्धि की भाँति राम के गुण चारों ओर स्वयं फैलने लगे।

उन्हीं दिनों एक समय राम ने लक्ष्मण को अपने पास बुलाया। राम की आकृति उस समय उदास थी। आँखें लाल थीं, प्रतीत होता था कि वे रात भर जागते रहे हैं। लक्ष्मण ने जब राम की चिन्ता का कारण पूछा तो राम बोले—

भाई, प्रजा सीता जी को रावण की लंका में रहने के कारण पवित्र नहीं समझती। अतः तुम आज ही सीता जी को ले जाकर वन में छोड़ आओ।

लक्ष्मण राम की आज्ञा सुनकर चित्रवत् निर्जीव हो गए। कुछ क्षण तक तो उन्हें अपने कानों पर ही विश्वास न रहा। उन्होंने राम को समझाने की कोशिश की, पर राम के बार-बार आज्ञा देने पर उन्हें विवश होकर वह सब स्वीकार करना पड़ा। सीता उन दिनों गर्भवती थी। वन में जाकर पुनः वन की प्राकृतिक सुन्दरता देखने की उसकी इच्छा थी। लक्ष्मण जी ने वन जाने की राम की आज्ञा सीता को सुना दी। सीता ने अपनी इच्छा के अनुकूल आज्ञा पाकर उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। लक्ष्मण सीता को लेकर वन में पहुँचे। वहां सीता जी के रथ से उतरने पर लक्ष्मण ने उनसे विदा माँगी। इससे सीता जी को महान् आश्चर्य हुआ। जब उन्हें राम की आज्ञा का वास्तविक रूप का पता चला तो वे फूट-फूट कर रोने लगीं। जैसे-तैसे हृदय पर पत्थर रखकर लक्ष्मण सीता जी को उसी भयानक पशु-पक्षियों से व्याप्त वन में छोड़कर अयोध्या वापस चले आए।

पास ही ऋषि वाल्मीकि का आश्रम था। वे स्नान करने के लिए नदी की ओर बढ़ रहे थे। मार्ग में किसी अबला का रुदन सुनकर वे उसी ओर गए। सीता

को इस प्रकार की दीनदशा में देखकर उनका मन पसीज गया। सीता को उन्होंने अपने आश्रम में ही रख लिया। सीता वहीं रहने लगीं। ऋषि वाल्मीकि अपने मनोहर काव्यों से और प्राचीन महापुरुषों की जीवन-गाथाओं से सीता का मन बहलाने लगे।

उन दिनों यमुना नदी के तटपर मधुपघ्न नाम की एक नगरी थी। लवण नाम का एक राक्षस उसका शासक था। वह यमुना तट निवासी तपस्वियों को सताया करता था। तपस्वियों ने उस दुष्ट राक्षस का नाश करने के लिए राजा राम से प्रार्थना की। साथ ही सूचित किया कि जब तक उस दुष्ट के हाथ में त्रिशूल रहेगा, उसे कोई न मार सकेगा। रामचन्द्र जी ने शत्रुओं को मारने वाले शत्रुघ्न को आज्ञा दी कि वे लवण को मारकर तपस्वियों का संताप दूर करें। सिर झुकाकर शत्रुघ्न ने राम की आज्ञा को स्वीकार किया और मधुपघ्न की ओर प्रयाण किया। सायंकाल हो जाने के कारण उन्होंने वाल्मीकि के आश्रम में निवास किया। उसी प्रातःकाल उनके युद्ध यात्रा के लिए प्रयाण के पूर्व सीता जी के दो पुत्र उत्पन्न हुए। शत्रुघ्न को यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई और वे प्रसन्नचित्त मधुपघ्न की ओर चल दिए।

मधुपघ्न का राजा लवण शिकार खेलने वन में गया हुआ था। उस समय वह अपना त्रिशूल महल में ही छोड़ गया था। शत्रुघ्न ने उसके महल पर अधिकार कर लिया और शिकार से वापस लौटते हुए लवण को मार्ग में ही घेर लिया। शत्रुघ्न और लवण का बड़ा भयंकर युद्ध हुआ, पर अन्त में लवण मारा गया। लवण को मारकर जब शत्रुघ्न लौट रहे थे तो कालिन्दी के तट पर उन्होंने मधुरा नाम की नगरी की स्थापना की। कुछ समय तक वे वहाँ रहे और फिर राजा राम की सभा में उपस्थित हो गए। पीठ पर हाथ फेर कर विजय की बधाई देते हुए राम ने शत्रुघ्न को बार-बार आशीर्वाद दिया। शत्रुघ्न को आश्रम से चलते समय महर्षि वाल्मीकि ने सीता के पुत्रों की सूचना न देने की आज्ञा दी थी। अतः शत्रुघ्न ने युद्ध और यात्रा की सभी घटनाएं कह सुनाईं पर सीता जी के पुत्रों की घटना नहीं कही।

एक दिन महाराज रामचन्द्र जी अपनी सभा में बैठे थे कि एक ब्राह्मण अपने मृत पुत्र को लेकर रोता-बिलखता उपस्थित हुआ। महाराज! महाराज! घोर अन्याय है। अकाल मृत्यु से मेरा पुत्र मारा गया है।

यह अनर्थ है, ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। इस प्रकार वह ब्राह्मण रो-रोकर समस्त सभासदों को शोक-विह्वल करने लगा। राम ने इसका कारण जानना चाहा तो किसी ने बतलाया कि अवश्य ही कोई राज्य में अनर्थ का आचरण कर रहा है। राम अपने पुष्पविमान पर बैठे और चारों ओर घूम-घूम कर उस अन्यायी की खोज करने लगे। तभी उन्होंने देखा कि एक व्यक्ति नीचे सिर लटकाए वृक्ष से बँधकर तपस्या कर रहा है। राम ने उसका परिचय पूछा तो उसने अपना नाम शम्बूक और अपनी जाति शूद्र बताई। धर्मशास्त्र के अनुसार शूद्र को केवल सेवा करने का अधिकार है, तप करने का नहीं। अतः राम ने उसी समय अपने एक ही प्रहार से शूद्रक का सिर धड़ से अलग कर दिया। महाराज राम के हाथों मरकर शम्बूक को उत्तम गति प्राप्त हुई। शम्बूक के मरते ही ब्राह्मण का मरा पुत्र जी उठा। उसके जीवित होते ही अपशब्द कहने वाला ब्राह्मण राम को बार-बार आशीर्वाद देने लगा।

महाराज राम के सभासदों ने उन्हें भी अपने पूर्वजों के समान राजसूय यज्ञ करने की सलाह दी। राम ने इसे स्वीकार कर लिया और अपने भाईयों की संरक्षता

में घोड़े को भूमि-भ्रमण के लिए छोड़कर यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। यज्ञ में राजा के साथ उसकी स्त्री का होना आवश्यक होता है, अतः कई सभासदों ने राम को एक विवाह और कर लेने की सलाह दी। परन्तु एक पत्नी-व्रती राम ने उसे स्वीकार न किया और रानी के स्थान पर सीता की सुवर्ण प्रतिमा बनाकर रख ली।

राजसूय यज्ञ में भाग लेने देश-देशान्तरों के ऋषि-मुनि, विद्वान्, कर्मकाण्डी तथा राजा-महाराजा पधारे थे। तभी वाल्मीकि जी ने लव और कुश को भी हाथ में वीणा देकर अयोध्या पुरी भेज दिया। वाल्मीकिजी ने जिस रामायण की रचना की थी वह लव-कुश को कंठस्थ थी। गन्धर्व पुत्रों के समान अपनी मधुर स्वर-लहरी से जन-जन को मोहित करते हुए वे दोनों बालक अयोध्यापुरी में घूमने लगे। उनके गान कौशल और रामचरित्र वर्णन की अद्वितीय कला से प्रभावित राजपुरुषों ने उनके आगमन का समाचार रामचन्द्र जी को भी सुनाया। उत्सुक हो उन्होंने दोनों बालकों को राजसभा में आमन्त्रित किया। बालकों ने सोत्साह राम-चरित्र गाकर सुनाया। तब बालकों के अभिभावकों के विषय में पूछने पर उन्होंने वाल्मीकि जी का नाम

लिया। वाल्मीकि जी ने अयोध्या में आकर राम को उनके पुत्रों से मिला दिया और पवित्र सीता जी को पुनः स्वीकार करने की मन्त्रणा दी। स्वीकार करने के पहले सीता जी की परीक्षा ली गई। राजसभा के मध्य में सीता जी ने अपने सतीत्व की परीक्षा दी और वे पृथ्वी माता की गोद में बैठ कर पृथ्वी में ही समा गईं। 'ठहरो, रुको, सीते! क्षण भर रुक जाओ।' चिल्लाते हुए राम बैठे के बैठे रह गए। सीता को ले जाने के कारण राम को पृथ्वी पर क्रोध आया, उन्होंने अपना प्रलयंकर धनुष उठा लिया। वे उस पर बाण चढ़ा ही रहे थे कि वाल्मीकि ने उन्हें रोक दिया। वे बोले--

राम! विधि बलवान है। तुम्हारा प्रयास निष्फल होगा।

एक दिन मृत्युदेव स्वयं भेस बदल कर रामचन्द्र से मिलने आए। उन्होंने आते ही रामचन्द्र से कहा—हम एकान्त में बातचीत करना चाहते हैं।

श्रीरामचन्द्र जी ने वैसा ही प्रवन्ध किया। उन्होंने लक्ष्मण को द्वार पर नियुक्त कर दिया। लक्ष्मण सन्नद्ध होकर खड़े हो गये। अन्दर यमराज ने अपना वास्तविक रूप प्रगट किया और राम से भूलोक छोड़ने

की प्रार्थना की। अभी ये बातें हो रही थीं कि महाक्रोधी दुर्वासा ऋषि रामचन्द्र से मिलने के लिये पधारे। उन महाक्रोधी को द्वार पर रोकने का लक्ष्मण को साहस न हुआ। परिणाम जानते हुए भी लक्ष्मण अन्दर चले गए और उन्होंने दुर्वासा ऋषि के आगमन को सूचना राम को दे दी। प्रतिज्ञा भंग के कारण लक्ष्मण ने सरजू में जाकर अपने प्राण त्याग दिए। श्री राम ने कुश को कुशावती का और लव को शरावती का राज्य सौंप दिया। तदनन्तर वे अपने शेष भाईयों को साथ लेकर यमराज के आदेशानुसार स्वर्ग सिधार गए। अनेक पुरवासी तथा सेवक उन्हीं के साथ स्वर्ग चले।

लव-कुश आदि सातों भाइयों ने राम के परलोक सिधार जाने पर भी रघुकुल की परम्परा को उसी प्रकार विद्यमान रखा। कुश को बड़ा मान कर सब अपने अपने राज्यों का शासन करने लगे। एक रात कुश अपने महल में सो रहा था। उसे स्वप्न में एक स्त्री दिखाई दी। स्त्री के वस्त्र स्थान-स्थान से फटे हुए थे और रूखे केश चारों ओर विखरे हुए थे। रोकर उस स्त्री ने कहा कि वह अयोध्या नगरी की अधिष्ठात्री है, उससे कुछ प्रार्थना करने आई है। रामचन्द्र के परलोक सिधारने

के उपरान्त अयोध्या सूनी पड़ी है। उसका सारा सौन्दर्य नष्ट हो गया है। उसने बार-बार कुश से प्रार्थना की कि वह अयोध्या को अपनी राजधानी बनाए। कुश ने स्वप्न की बात को एक सन्देश समझा और कुशावती से अपनी राजधानी अयोध्या को ले आए।

श्रीराम ने राज्याभिषेक के समय एक हार कुश के गले में पहनाया था। कुश सदा उसे धारण किए रहते थे। एक दिन वे सरयू में स्नान कर रहे थे कि उनके गले का हार कहीं गिर पड़ा। अवश्य वह सरयू में है यह विचार कर कुश ने सेवकों को आज्ञा दी कि वे हार सरयू में से खोज निकालें। पर्याप्त समय तक सेवक प्रयत्न करते रहे, पर हार न मिल सका। क्रुद्ध होकर कुश ने धनुष पर बाण चढ़ाकर सरयू में रहने वाले सब जलचरों को मार डालने का निश्चय कर लिया। बाण धनुष से निकल कर सरयू के जल को खौलाने लगा। भयभीत होकर नागराज अपने हाथों में हार लिए जल से बाहर निकला और हाथ जोड़कर कुश से बोला––

महाराज! क्षमा करें। मेरी कन्या ने इस हार को खिलौना समझकर उठा लिया था। आपको इसके लिए महान् कष्ट उठाना पड़ा है। आपसे निवेदन है कि

इस हार को और मेरी इस कुमुद्वती नाम की कन्या को स्वीकार करें।

राजा कुश ने उसे स्वीकार कर लिया। उस दिन से नागों ने उत्पात करना ही छोड़ दिया! कुश प्रसन्नता से राज्य करने लगे!

कुमुद्वती से जो सन्तान उत्पन्न हुई, राजा कुश ने उसका नाम अतिथि रखा। अतिथि भी अपने पिता के समान ही बलवान था। राजा कुश ने अतिथि को राज-पाट सौंप दिया और स्वयं तपस्या करने चले गये। कुश की भाँति अतिथि भी नीति कुशल तथा न्याय-प्रिय था। अतिथि ने निषिध देश की कन्या से विवाह किया और उससे जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम नल रखा गया। क्रमशः इस वंश में पुण्डरीक, क्षेमधन्वा, अहीनग्र, पारियात्री, नाभि, अजस्त्रबाहु हिरण्यगर्भ, हरिश्चन्द्र और सुदर्शन आदि राजा हुए। सुदर्शन का एक पुत्र था। अग्निवर्ण उसका नाम था। सुदर्शन के स्वर्ग-गमन के उपरान्त अग्निवर्ण राजा हुआ। उस समय तक रघुकुल की धाक चारों ओर जमी हुई थी। अतः शत्रु की ओर से निश्चिन्त होकर अग्निवर्ण भोग-विलास में रत हो गया अतिविषयी होने के कारण अग्निवर्ण को

राज्ययक्ष्मा ने घेर लिया और वह इसी रोग में मर भी गया। अग्निवर्ण के कोई सन्तान न थी। अतः मन्त्रियों ने उसकी गर्भवती रानी को ही राजसिंहासन पर बिठा दिया।

कुमारसम्भव

(१)

उत्तरदिशा में पर्वत शिरोमणि हिमालय नाम का एक पर्वत है ! इस पर्वत-प्रदेश पर शासन करने वाले राजा को भी हिमालय नाम से ही पुकारा जाता था। इसी प्रदेश के एक राजा हिमालय ने मेना नाम की राजकुमारी से विवाह किया। उसी मेना से हिमालय को मैनाक और पार्वती नाम की सन्तति प्राप्त हुई। समय पाकर मैनाक नाम के इसी पुत्र ने जिस पर्वत पर शासन किया वह भी मैनाक ही कहलाया।

हिमालय की पुत्री पर्वतराज की कन्या थी, अतः उसका नाम पार्वती पड़ा। पार्वती के पूर्वजन्म की भी एक विस्तृत कहानी है। पार्वती पूर्वजन्म में दक्ष प्रजापति की पुत्री थी ! देवाधिदेव श्री महादेव से दक्ष ने अपनी पुत्री सती का विवाह किया था ! प्रजापति दक्ष ने एक बार महायज्ञ का आयोजन किया। शंकर जी की अनोखी वेश-भूषा के प्रति उसे अश्रद्धा थी। अतः उसने सती की भी उपेक्षा की और यज्ञ में उसे निमंत्रित नहीं किया। सती माता-पिता के प्रति स्वाभाविक प्रेम के

वशीभूत होकर बिना बुलाए ही यज्ञ में सम्मिलित होने चली गई, जहाँ कि उसका घोर अपमान हुआ और उसने क्रोध में भरकर उस कुण्ड यज्ञ में अपना शरीर भस्म कर दिया। उस समय सती की इच्छा थी कि अगले जन्म में श्री महादेव ही उसे पति रूप में प्राप्त हों।

पार्वती जी का बचपन हिमालय तट पर बहने वाली मन्दाकिनी के पावन तट पर खेल-कूद में बीता। ज्यूं-ज्यूं उसका शैशव पीछे छूटता जाता, अंगों में एक प्रकार का मादक विकास होता जाता। पार्वती का अनुपम सौन्दर्य क्रमशः वसन्त के पुष्प की भाँति दशों दिशाओं को सुगन्धित करने लगा! पार्वती के अतिरिक्त हिमालय और मेना के मैनाक आदि कई अन्य सन्तानें भी थीं, पर जितना प्रेम उन्हें पार्वती से था उतना किसी से भी न था। क्योंकि सबको गुणों से प्रेम होता है केवल पुत्रमात्र होने से ही कोई सर्वाधिक प्रीति-भाजन नहीं हो जाता।

एक दिन महामुनि नारद अन्तःपुर में पधारे। हिमालय ने मुनि का सपरिवार स्वागत किया। उस समय सबके साथ पार्वती ने भी मुनि का अभिवादन किया। पार्वती को देख कर मुनि को उसका भविष्य

जानने की उत्कण्ठा हुई। उन्होंने ध्यान लगाया और पार्वती का भविष्य जान लिया। उनका मानस-कमल उसे जानकर खिल गया। अपनी प्रसन्नता को प्रगट करते हुए वे हिमालय से बोले—राजन्! तुम्हारी यह पुत्री अति सौभाग्यशाली है। यह देवाधिदेव महादेव की पत्नी होगी।

नारद के वचन सुनकर हिमालय को उतनी ही प्रसन्नता हुई जितनी कि सिर का बोझ उतर जाने से थके-मांदे व्यक्ति को होती है। वे निश्चिन्त हो गए। यहाँ तक कि उन्होंने पार्वती के लिए वर खोजना भी बन्द कर दिया। पर साथ ही उन्होंने महादेव से पार्वती को स्वीकार करने की प्रार्थना भी नहीं की। स्वाभिमानी लोग सदा फूंक-फूंक कर पग रखा करते हैं। हिमालय समझता था कि यदि कहीं शिवजी ने उसकी प्रार्थना को ठुकरा दिया तो वह अपमान असह्य हो जायगा। जब से दक्षराज की पुत्री सती ने यज्ञकुण्ड में अपना शरीर भस्म कर दिया था, तब से भगवान शंकर ने निश्चय कर लिया था कि वे विषय-वासना से सदा दूर रहेंगे। तप-साधना उन्होंने प्रारम्भ कर दी थी। उनकी अखण्ड समाधि हिमालय पर्वत पर ही लगी हुई थी।

हिमालय ने जया और विजया नाम की दो सहेलियों के साथ पार्वती को शिवजी की सेवा में जाने की आज्ञा दी। पार्वती की प्रार्थना पर शिवजी ने उसे तप में विघ्नकारी जानकर भी अपनी सेवा में ले लिया। महादेव जी विकार रहित थे और सच्चा विकार रहित धीर भी तो वही है जो विकार का कारण होने पर भी अविकारी रहे। पार्वती नियमानुसार एकचित्त हो महादेव जी की सेवा करने लगी। महादेव जी के नित्य-कर्म की समस्त सामग्री जुटा देना ही पार्वती का प्रधान कर्तव्य हो गया।

: २ :

तारकासुर नाम के राक्षस ने देवताओं को पराजित करके स्वर्ग पर अपना अधिकार कर लिया था। यज्ञ तप आदि से देवताओं को बल प्राप्त होता है। वह देवताओं को निर्बल बनाने के लिए यज्ञ-तप का विध्वंस करने लगा। कई बार देवताओं ने उसे संग्राम में पराजित करने का प्रयास किया, पर वे सदा असफल रहे। स्थान-स्थान पर तारकासुर ने देवताओं को पराजित किया। तारकासुर का आतंक इतना छा गया कि देवता उसका नाम सुनकर कांपने लगे। तारकासुर के

शासन में कष्ट भोगते-भोगते उन्हें इसी प्रकार कई वर्ष व्यतीत हो गए। तब देवताओं ने देवराज इन्द्र और अन्य महान् देवताओं को आगे करके ब्रह्मलोक की ओर प्रस्थान किया। मिलकर सब ने ब्रह्मा जी की प्रार्थना की। ब्रह्मा जी देवताओं के सम्मुख उसी प्रकार प्रगट हुए जैसे रात्रि के मुरझाए कमलों के समक्ष सूर्य उदय होता है। दुःखित देवताओं को ब्रह्मा जी ने सान्त्वना दी। तब बृहस्पति सब देवताओं के आगे आए और ब्रह्मा जी से बोले—भगवन्! आपका वर पाकर तारक अतिदुष्ट हो गया है। वह हम सब देवताओं को भांति-भाँति के असह्य कष्ट देता है। उसका अत्याचार सहते-सहते हमारी यह दशा हो गई है कि हम, जो कभी स्वर्ग में स्वेच्छा से विहार किया करते थे, आज वनों में भी शंकित होकर घूमते हैं। आठों प्रहर हमें तारक की भयंकर आकृति आँखों के सम्मुख अट्टहास-सी करती दिखाई पड़ती है। हे प्रभो! उसने यम, अग्नि, वरुण आदि सबको अपने वश में कर लिया है और सबसे प्रकृति-विरुद्ध मनमाना काम लेता है। समस्त देव-पत्नियों को उसने अपनी कारा में कैद कर रखा है। यज्ञ-भाग वह स्वयं लेता है और हम आपके दास भूखों

मरते हैं। जगत्पिता ! हमें कोई ऐसा उपाय बताइए कि हमारी छिनी हुई लक्ष्मी हमें फिर प्राप्त हो सके। ब्रह्मन् ! किसी प्रकार उसका अन्त करके अपने प्रिय पुत्रों की रक्षा कीजिए।

गर्जने के उपरान्त जिस प्रकार वृष्टि सुखदायक होती है उसी प्रकार सर्व सुखदायी वाणी में ब्रह्मा जी बोले—देखो ! यह तो तुम भलिभाँति जानते हो कि मैंने ही तारक को वरदान दिया है। हे देवगण ! तनिक सोचो तो, अपने हाथ से लगे विष-वृक्ष को भी उखाड़ना कठिन हो जाता है। फिर भला मैं स्वयं तारक का कैसे अन्त कर सकूँगा। परन्तु फिर भी तुम धीरज धरो। तुम्हारी मनोकामना शीघ्र ही पूर्ण होगी, पर इसके लिए तुम्हें महादेव की शरण में जाना पड़ेगा। वे ही एक ऐसे देव हैं जिनका मैं और स्वयं विष्णु भी भेद नहीं पा सकते। हिमालय की पुत्री पार्वती इस समय उन्हीं को पति रूप में पाने के लिए तपस्या कर रही है। अब तुम्हारा कर्तव्य है कि जिस प्रकार भी हो सके भगवान् शंकर का ध्यान पार्वती की ओर आकर्षित करो। इस प्रकार तुम्हें उनका पुत्र प्राप्त होगा। उसे तुम अपना सेनापति बनाना और वही पुत्र तारक का नाश करेगा।

ब्रह्मा जी के वचनों से देवताओं को पर्याप्त सन्तोष हुआ। ब्रह्मलोक से वापस आकर सबने परामर्श किया। बहुत विचार-विमर्श के उपरान्त इन्द्र ने कामदेव को बुला भेजा और शेष देवताओं को विश्राम करने की अनुमति दी। देवराज इन्द्र की आज्ञा पाते ही कामदेव सेवा में उपस्थित हो गया। इन्द्र उसे एकान्त में ले गए। तब देवराज को प्रसन्न करने का सुअवसर देखकर स्वयं कामदेव ही पहले बोला—

हे देवराज ! आज आपने मुझे स्मरण करके जो अत्यधिक महत्व प्रदान किया है उसके लिए मैं आपका शतशः आभारी हूँ। ऐसा कौन है जिसने आपका प्रभुत्व बिना पहचाने आपका पद पाने के लिए तप प्रारम्भ किया है ? आप उसकी तनिक भी चिन्ता न करें। मैं अपने कोमल धनुष की रसवती प्रत्यंचा पर पुष्प बाणों का ऐसा प्रहार करूँगा कि वह आपका दासानुदास हो जाएगा। आपकी कृपा चाहिए महाराज ! उसी कृपा के बल पर साधारण मनुष्य और ऋषि-मुनि तो क्या मैं भगवान् शंकर का मन भी विचलित कर सकता हूँ।

यह सुनते ही इन्द्र मन ही मन प्रसन्न हो गया। फिर कुछ विचार कर बोला—मित्र ! मेरे दो ही प्रधान

अस्त्र हैं. जिनके सहारे मैं त्रिलोकी में किसी से भी नहीं डरता। उनमें से एक तो वज्र है और दूसरे तुम हो। प्रियमित्र ! इस समय देवताओं पर वह संकट छाया हुआ है जिसे वज्र भी टाल नहीं सकता। अब तुम्हारी आवश्यकता है। तुम्हीं उस काम को पूरा कर सकते हो। तुम साहस करो और हिमालय पर जाकर शंकर भगवान का मन बींध दो। वहीं हिमालय की पुत्री पार्वती शिव के साथ विवाह की कामना से उनकी सेवा में लगी रहती है।

इन्द्र के वचन सुनते ही कामदेव भय से काँप उठा। उसे भयभीत देखकर इन्द्र ने कहा—मित्र ! चिन्ता न करो, हम भी तुम्हारे साथ ही साथ चलेंगे। तुम पर किसी प्रकार की आपत्ति न आ सकेगी।

जब कामदेव की पत्नी रति ने सुना तो वह भी बार-बार हठ करने लगी। हार कर कामदेव ने उसे भी साथ लिया और देवताओं के साथ-साथ हिमालय की ओर चल दिया।

वसन्त के प्रभाव से असमय में भी वृक्ष और लताएं फूलों से लद गईं, किन्नर गण विहार करने लगे, मलय पर्वत का सुगन्धित पवन बहने लगा और पशु-

पक्षी तक कामासक्त होगए। नान्दी ने आगे बढ़कर इस शोर को हाथ के संकेत से शान्त करने की आज्ञा दी। तभी कामदेव ने देखा—महादेव सिद्धासन लगाए बैठे थे। पार्वती जी ने उनकी ओर पूजा करने के विचार पग बढ़ाए, उन्होंने अपनी आँखें खोल दीं।

पार्वती जी का अनुपम सौन्दर्य देखकर कामदेव अति प्रसन्न हुआ। पार्वती जी का सौन्दर्य भी उसे अपना एक अमोघ अस्त्र प्रतीत हुआ।

कामदेव आम्रमंजरियों के बीच वीरासन लगाकर, अपना धनुष सम्हालकर बैठ गया और अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। पार्वती ने पुष्प एकत्रित किए। अपनी अंजलि में पुष्पहार लेकर वह शिव जी के सामने खड़ी हो गई। पार्वती को खड़ा देखकर शिव जी ने नित्य की तरह अपना सिद्धासन ढीला कर दिया और पार्वती जी की ओर देखा। समय उपयुक्त था। कामदेव ने अपने धनुष की प्रत्यंचा चढ़ा ली और ज्योंही पार्वती जी ने अपनी अञ्जलि का हार शिव जी के गले में डाला, कामदेव ने अपना सम्मोहनास्त्र उनकी ओर लक्ष्य करके धनुष पर चढ़ा लिया। शिव जी की इन्द्रियाँ चंचल हो उठीं। इस चंचलता का कारण जानने के लिए उन्होंने

चारों ओर देखा तो एक ओर कामदेव अपने धनुष पर बाण चढ़ाए, लक्ष्य साधता हुआ दीख पड़ा। शिव जी का तप भंग हो गया और क्रोध में आज्ञाकारी सेवक की भाँति उनका तीसरा नेत्र खुल गया। अग्नि प्रज्ज्वलित हो गई। काम के प्रहार का प्रतिफल देखने को उत्सुक समस्त देवता एक स्वर से चिल्ला उठे—महाराज! आपका प्रलयकारी क्रोध नाश कर देगा, नाश कर देगा! रक्षा करो, रक्षा करो!—पर उनकी पुकार कौन सुनता? अभी वे यह सब कह ही रहे थे कि शंकर जी के तीसरे नेत्र की अग्नि ने कामदेव को भस्म कर दिया।

: ३ :

काम की पत्नी रति ने जब अपने पति की यह दशा देखी तो वह पति-वियोग का दुःख न सह सकी और मूर्च्छित हो गई। कामदेव के प्रभाव से बचने के लिए शिव जी अन्तर्द्धान हो गए। बेचारा हिमालय उसी समय भागता-भागता आया और अपनी पुत्री पार्वती को वहाँ से ले गया।

मूर्छित रति अपने स्थान पर पड़ी थी। दया करके विधाता ने उसे सचेत किया। तब वह विलाप करती हुई

अपने पति की भस्म पर बार-बार लोटने लगी। पति के सुन्दर शरीर का ऐसा वीभत्स अन्त देखकर उसकी आत्मा रो पड़ी। उसके आँसू झरने की तरह बहने लगे। रति का करुण विलाप सुनकर तपस्या का वह निर्मोही स्थान भी मानो रो पड़ा। रति अपने मृतपति को सम्बोधित करके बोली—हे सर्वसुन्दर! तुम्हें यह क्या हो गया है! तुमने आज यह कैसा रूप बना लिया है? मैं सचमुच स्वार्थी हूँ। जिस समय तुम्हारा सुन्दर शरीर भस्म हो रहा था उस समय मैं मूर्छित हो गई और तुम्हारा साथ न दे सकी और मैं अभी तक जीवित हूँ। प्रिय! तुम कितने झूठे, कितने चाटुकार थे। तुम प्रायः कहा करते थे कि मैं तुम्हारे हृदय में वास करती हूँ। यदि यह सत्य होता तो आज मैं तुमसे पृथक् न होती, बल्कि तुम्हारी ही तरह भस्म होकर तुम्हारा साथ निभा रही होती। हे क्रीड़ाकुशल! कुछ तो स्मरण करो। यहाँ आने से पहले तुमने मेरे एक पैर में द्रवराग लगाया था। मेरा दूसरा पैर अभी तक रागहीन है। क्या वह सदा इसी प्रकार श्रृंगाररहित रहेगा? क्या तुम इस पर कभी भी राग नहीं लगाओगे? आओ! मेरी पुकार सुन लो और आकर मेरा यह पैर भी राग-रंजित कर दो। देखो न! यह कितना अशोभन लग रहा है?

कामदेव की दशा देखकर और अपने को उसकी रक्षा में असमर्थ पा वसन्त भी अन्य देवताओं की भाँति अदृश्य हो गया था। रति ने उसे पुकारा—हे वसन्त ! कहीं तुम भी तो मेरे पति के साथ ही भस्म नहीं हो गए। हाय ! यदि ऐसा हो गया तो अब मेरा कहाँ त्राण है। तुम ही तो उनके प्रियमित्र थे। हे वसन्त ! यदि तुम सौभाग्य से जीवित हो तो कृपा करके मुझे दर्शन दो।

रति का विलाप सुनकर वसन्त ने अपने प्राणों का मोह त्याग दिया। वह रति के सम्मुख प्रगट होकर उसे सान्त्वना देने लगा। पति के मित्र को देखकर रति का शोक बढ़ गया। वह और भी विलख-विलखकर विलाप करने लगी। कामदेव की भस्म की ओर संकेत करके वह बोली--प्रिय ! हो सकता है मेरे साथ काफी समय से रहते-रहते तुम्हारा मन मुझसे उदासीन हो गया हो और तुम न दिखाई पड़ रहे हो, पर अपने मित्र का तो कुछ विचार करो। उससे तो मिल लो।

रति का यह मुक्तकण्ठ विलाप सुनकर देवताओं की आँखें भर आईं। देवताओं के समझाने-बुझाने पर भी वह न समझी और वसन्त को लक्ष्य करके फिर बोली—वसन्त ! बुझे दीपक की लो की भाँति तुम्हारा मित्र इस

लोक से चला गया है और मुझे देखो, मैं उस बुझे दीपक की धुआँ देती बाती की तरह अभी शेष हूँ। अब मेरे जीवन से लाभ ? तुमसे मेरी विनती है, मेरे लिए चिता बना दो जिससे मैं भी अपने पति से जा मिलूँ। मित्र ! तुमने ही कई बार अपने हाथों से पुष्प-शैया बनाकर मुझ से मेरे पति का मिलन कराया है। मैं इस समय भी अपने पति से मिलना चाहती हूँ। अतः मुझ पर इस बार भी अनुग्रह करो। मेरे लिए एक चिता बना दो।

रति को सती होते हुए देखकर देवताओं ने एक साथ हाथ उठाकर कहा--रति ! तुम अपने शरीर की रक्षा करो। तुम्हारा पति तुम्हें अवश्य मिलेगा। जिस प्रकार सूखी नदी वर्षा होने पर फिर से बहने लगती है उसी प्रकार रति की जीवन यात्रा देव-सन्देश सुनकर फिर से पूर्ववत् गतिवान हो गई।

महादेव जी ने पार्वती की ओर थोड़ा भी ध्यान न दिया था और अन्तर्द्धान हो गए थे। पार्वती को इससे महान् खेद हुआ। उसे अपना स्वर्गीय सौन्दर्य निरर्थक लगने लगा। उस रूप से भी क्या लाभ, जो पति को अपनी ओर आकर्षित न कर सके। उस रूप के प्रति उदासीन होकर पार्वती ने अपने समस्त राजसी आभू-

षण उतार दिए और बल्कल धारण कर लिए । पलंग छोड़कर पृथ्वी पर सोना आरम्भ कर दिया । अपने पुष्परसों से सिंचित केशों की जटा बना ली । हाथ में रुद्राक्षमाला और हृदय में शिव जी की स्थापना कर वह तप करने लगी । हिमालय की एक चोटी पर अपनी साधना का स्थान बनाकर जब तप करने के लिए उद्यत हुई तो हिमालय ने उसे बार-बार इस कठिनपथ पर चलने से रोका । माता मेनका ने उ, मा 'पुत्रि ऐसा मत करो' कहकर पार्वती को समझाया । इसीलिए उसका नाम उमा पड़ा । पार्वती ने सादर अपने माता-पिता की आज्ञा मानने से इन्कार कर दिया ।

पार्वती ने बहुत तप किया । परन्तु इस पर भी जब शिव जी प्रसन्न न हुए तो अपने कोमल शरीर की अवहेलना कर वह भाँति-भाँति के कठोर तप करने लगी । उसने चारों ओर अग्नि प्रज्ज्वलित कर ली, ऊपर से सूर्य की प्रखर किरणें उसे तपाने लगीं । वह अग्नियों के मध्य में बैठ गई और तप करने लगी । इस पर भी जब शिव जी प्रसन्न न हुए तो घने वर्फीले कोहरे के बीच में ही वह शीतल जल में बैठ गई । वायु और चन्द्र की किरणें ही उसका भोजन थीं । तपस्वी पत्ते

खाकर तप करते हैं, पर उसने पत्ते भी नहीं खाए । इस लिए उसका नाम अपर्णा प्रसिद्ध हुआ ।

इसी प्रकार पार्वती अपना तपस्वी जीवन व्यतीत कर रही थी कि एक दिन एक ब्रह्मचारी वहाँ आया । उसने हाथ में कमण्डलु और दण्ड पकड़ा हुआ था, शीश पर मृगचर्म धारण किये हुए था । उसका यज्ञोपवीत दूर से ही दिखाई देता था । ब्रह्मतेज से उसका मुख देदीप्यमान था । पार्वती जी ने देखा तो उसका अतिथि-सत्कार किया । पार्वती को कठोर तप में निरत देखकर वह ब्रह्मचारी कहने लगा—तपस्विनी बाले ! तुम्हारा कठोर तप देखकर मुझे आश्चर्य हो रहा है । अभी तक तो केवल यह प्रसिद्ध था कि सप्तर्षियों के बिखराए स्वर्गीय-पुष्पों से और गंगा से यह हिमालय पवित्र था । पर अब तो मुझे यह दीखता है कि तब यह हिमालय उतना पवित्र नहीं था, जितना अब तुम्हारी तपस्या से हो गया है । तीनों लोकों के सौन्दर्य तुम्हारे सामने निरर्थक प्रतीत होते हैं । सत्य तो यह है कि तप से तुम्हारा सौन्दर्य निखर उठा है । तुम हिमालयराज की लाड़ली पुत्री हो, फिर भला तुम्हें धन-सम्पदा की क्या कमी ? अनश्वर यौवन तुम्हारे पास है । तपस्विनि !

जब कि संसार की समस्त सर्वप्रिय सम्पदाएँ तुम्हें उपलब्ध हैं तो फिर तुम्हारी यह कठिन साधना किसलिए है ? ऐसी कौन-सी वस्तु है जिसके लिए तुम्हें तपस्या करनी पड़ रही है ?

जब पार्वती कुछ भी न बोली तो वह ब्रह्मचारी फिर बोला—बाले ! चाहे तू ने मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया, पर फिर भी तेरे गरम श्वासों से मैं तेरे हृदय की व्यथा का अनुमान लगा चुका हूँ। मुझे इतने पर भी सन्देह है। हीरा कभी भी अपने चाहने वाले को नहीं खोजा करता। उसके चाहने वाले असंख्य हैं। तुम जिसके लिए यह कठिन तप कर रही हो वह अवश्य कोई पत्थर-हृदय है। अन्यथा ऐसा कौन है जो तुम्हें देखते ही तुम्हारा दास न हो जाए। मुझे तुमसे सहानुभूति है। तुम मुझे अपने चहेते वर का परिचय दो। मैं अपने सारे तप के प्रभाव से तुम्हें चहेते से मिलने का वरदान दे दूंगा।

प्रसन्न होकर पार्वती ने सखी को अपने हृदय की बात ब्रह्मचारी से कहने का संकेत किया। पार्वती की सखी बोली—हे ब्रह्मचारिन् ! हमारी सखी की तपस्या का कारण देवाधिदेव शंकर जी हैं। मन, कर्म, वचन

से इन्होंने शिवजी को अपना पति स्वीकार किया हुआ है। प्रायः मैंने इन्हें शिवजी का चित्र लेकर उन्हें 'तुम अन्तर्यामी हो पर फिर भी मेरे हृदय की बात नहीं जानते, कैसे प्रभु हो' कहकर उलाहना देते हुए सुना है। उन्हीं शिवजी को पाने के लिए इन्होंने तप करना प्रारम्भ कर दिया है।

इस पर ब्रह्मचारी ने आश्चर्य प्रगट किया। पार्वती समझी कि ब्रह्मचारी को उसकी अलभ्य अभिलाषा पर आश्चर्य हुआ है। अतः वह बोली—ब्रह्मचारिन् ! इच्छा की कोई सीमा नहीं होती। अलभ्य से अलभ्य वस्तु पाने को भी दिल चाहने लगता है। आप इस पर आश्चर्य न करें।

अब ब्रह्मचारी से बिना हँसे न रहा गया। वह बोला—भद्रे ! मैं शिव को भली भाँति जानता हूँ। आश्चर्य है कि तुम शिव से विवाह करना चाहती हो। बाले ! उसके माता-पिता, कुल और जाति का कुछ भी पता नहीं। नंगा, हाथ में त्रिशूल और खप्पर लेकर वह अनाथ-सा वन-वन मारा फिरता है। यह तो तुम भली-भाँति जानती हो कि सर्प समस्त जन्तुओं में नीचजाति का समझा जाता है। शिव को उसी नीचजाति से प्रेम है। इसमें उस बेचारे का क्या अपराध ? जो जैसा होता

है, अपने अनुरूप साथी खोज निकालता ही है। कहाँ तुम लक्ष्मी-सी सौन्दर्य और कलाओं की स्वामिनी और कहाँ वह अवगुणों और अशकुनों का भण्डार शिव। अभी तक तो केवल हमें शिव के मस्तिष्क पर रहने वाली चन्द्रकला की ही चिन्ता थी, पर अब तुम्हारी भी चिन्ता सताने लगेगी। हे तपस्विनि ! संसार में सबके दो नेत्र सुने हैं पर शिव की अशोभन प्रकृति दिखाने के लिए ब्रह्मा ने तीन नेत्र प्रारम्भ से ही दे दिए हैं। हे सर्वसुन्दरि ! सुगन्धित पुष्पभूमि पर चलने वाले तुम्हारे ये आलक्त से रंगे हुये चरण जब श्मशान भूमि पर पड़ेंगे तब सच कहता हूँ कि ब्रह्मा को भी अपनी रचना पर सन्ताप होगा। तुम्हारी सवारी के लिए तो ऐरावत हाथी होना चाहिए। पर जब लोग तुम्हें उस बूढ़े नान्दी पर चढ़ा देखेंगे तो निश्चय ही हँसेंगे। हे कुमारि ! अब भी समय है। वर के गुणों में से एक भी गुण शिव में उपलब्ध नहीं होता। तुम अब भी अपने निश्चय पर पुनः विचार कर लो।

ब्रह्मचारी की बातें सुनकर पार्वती को हँसी आ-गई। शिवजी की महिमा वर्णन करते हुए वह बोली—शिव तीनों आदिदेवों के अधिपति महादेव हैं। विश्व की समस्त शक्तियाँ उन्हीं के संकेतों पर काम करती हैं।

स्वर्ग का अधिपति इन्द्र उनके चरणों पर मस्तक रगड़ता है। ताण्डव नृत्य के समय जो भस्म उनके शरीर से गिरती है उसे ब्रह्मा, विष्णु समेत देवता अपने मस्तक पर लगाते हैं। हे कुटिल, तुमने शिवजी के लिए जो कुछ भी कहा है, विचार कर नहीं कहा है। उनके प्रति तुम्हें एसे वचन नहीं कहने चाहिएं।

ब्रह्मचारी अभी कुछ कहना ही चाहता था कि शिव की निन्दा न सुनाई दे इस विचार से पार्वती वहाँ से चल दी। उसे चलते देखकर ब्रह्मचारी ने उसका कोमल हाथ पकड़ लिया। क्रोध में भरकर ज्योंही पार्वती ने मुड़कर देखा, हक्की-वक्की रह गई। चलने के लिए आगे बढ़ाया पैर न आगे बढ़ा और न पीछे ही वापस मुड़ सका। मार्ग में पर्वत आ जाने पर जैसे नदी रुक जाती है, पार्वती भी रुक गई। ब्रह्मचारी का कहीं कुछ पता न था। पार्वती के आराध्यदेव श्री शिवजी उसके वस्त्र का छोर पकड़े खड़े थे। पार्वती को अचम्भित देखकर शिवजी स्वयं बोले—सुन्दरि ! तेरी तपस्या से खरीदा हुआ मैं शंकर आज से तेरा दास हूँ।

तपस्या सफल हो जाने पर पार्वती अपने घर चली गई। शिवजी ने सप्तर्षियों का ध्यान किया। उन्होंने

सप्तर्षियों को विवाह-सन्देश लेकर हिमालयराज के पास जाने की आज्ञा दी और स्वयं साँकेतित स्थान पर बैठ कर उनकी प्रतीक्षा करने लगे ।

सप्तर्षियों के पधारने पर हिमालय ने उनका सपरिवार स्वागत किया, उन्हें यथास्थान बिठा कर, उनकी पूजा करके उन्होंने उनके पधारने का कारण पूछा । जब उन्होंने भगवान शंकर का सन्देश कह सुनाया तो हिमालय ने अपनी पत्नी, पार्वती की माता, मेना की ओर प्रश्न सूचिक दृष्टि से मुस्कराते हुए देखा । इसका यह तात्पर्य नहीं कि हिमालय इस सम्बन्ध से प्रसन्न नहीं था । अपितु विवाह आदि के विषय में सहमति देने पर पति सदा पत्नी को ही मुख्यता देता है । हिमालय के लिए इससे बढ़कर और कौन-सा सौभाग्य हो सकता था ? पार्वती और शिवजी का विवाह पक्का हो गया । सप्तर्षियों ने हिमालय की स्वीकृति का सन्देश शंकर भगवान को कह सुनाया । शुक्लपक्ष की पुण्यतिथि को भगवान शंकर अपनी बारात लेकर आकाश मार्ग से हिमालय की ओर चल दिए । बारात में सबसे आगे शिवगण अपने अनोखे वाद्य बजाते जा रहे थे । उनके बाद उनसे भयभीत से कुछ दूर होकर देव-सैनिक अपने

मृदंग आदि बजाते हुए चल रहे थे । फिर शिवजी थे । शरीर पर उनके गजचर्म था । हाथ में त्रिशूल था । वे नान्दी पर विराजमान थे । उनके नान्दी के गले में बन्धी घण्टियाँ बार-बार बज रही थीं । वह प्रायः अपने सिर को स्वाभाविक रूप से हिला देता था जिससे कि आकाश में विचरते हुए बादल उसके सींगों में अटक जाते थे । प्रतीत होता था उसने मस्ती में भरकर किसी नदी के तट को अपने सीगों द्वारा उखाड़ फेंका है । और वहीं की मिट्टी अभी तक उसके सीगों में लगी है । शिवजी के पीछे पाँचजन्य शंख बजाते हुए श्री विष्णु तथा वेदपाठ करते हुए ब्रह्मा चल रहे थे । इन्द्रादि समस्त देवता उनके पीछे-पीछे शिव स्तुति का गान करते हुए चल रहे थे ।

शिवजी की बारात हिमालय पहुँची । पार्वती की सखियों ने उसका अनुपम शृंगार किया था । दोनों की शोभा दर्शनीय थी । देखने वाले कह रहे थे कि यदि विधाता ने इन दोनों का संयोग न मिलाया होता तो दोनों की सौन्दर्य-रचना व्यर्थ हो जाती । समस्त देवताओं तथा ऋषि-मुनियों के समक्ष शंकर तथा पार्वती का विवाह हुआ । यह प्रसन्नता का समय था, अतः इन्द्र ने

उसका लाभ उठाया। वह शिवजी के सामने जाकर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और बोला––महादेव ! क्रोध में आपने कामदेव को भस्म कर दिया था। अब आप उसे सजीव होने का वर दें जिससे कि वह आपकी सेवा कर सके। शिवजी मुस्कराए और फिर बोले—हाँ ठीक है। अब वह जितने भी चाहे, अपने बाण चला सकता है।

कुछ समय हिमालय पर ही बिताकर शिवजी ने वहां से विदा ली। मलयपर्वत और नन्दन वन में भ्रमण करते हुए वे गंधमादन पर्वत पर गए। वहाँ एक दिन वे पार्वती सहित एक शिला पर विराजमान थे कि सब देवता उपस्थित हो गए। उनकी अनुमति से अग्नि आगे बढ़े और उन्होंने देवताओं के सेनापति के लिए की गई प्रार्थना का स्मरण कराया। शिवजी ने शीघ्र ही योग्य सेनापति जो तारक को मार सके, देने का वचन दिया।

देवताओं को इस प्रार्थना के कुछ समय बाद पार्वती जी ने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया। उसका नाम कार्तिकेय रखा गया। कुमार कार्तिकेय अपने जन्म के छठे दिन ही युवक हो गए। उनका तेज देखकर देवताओं को बड़ी प्रसन्नता हुई। शंकर भगवान ने कुमार कार्तिकेय को तारक का बध करने की आज्ञा दी और कुमार

देवताओं के सेनापति होकर तारक का वध करने के लिए चल दिए।

तारक के आतंक से देवता इतने भयभीत थे कि नगर में प्रवेश करते समय किसी में भी आगे चलने का साहस न था। सब एक-दूसरे का मुँह ताक रहे थे। तब कार्तिकेय स्वयं आगे-आगे चले। देवताओं ने जब नगर को घेर लिया तो उस समाचार से तारक का खून खौलने लगा। उसकी आँखें मानो अग्नि बरसाने लगीं। सैनिकों को उसने युद्ध के लिए तैयार हो जाने का आदेश दिया और स्वयं रथ पर बैठ कर उनके आगे-आगे चला। उसके क्रोध में चलने से दिशाएँ कांपने लगीं। वायु की गति तीव्र हो गई और सूर्य का प्रकाश मन्द पड़ गया। मार्ग में तारक को भाँति-भाँति के अशकुन होने लगे। परन्तु उसने किसी की भी चिन्ता न की। सिंह की भाँति दहाड़ता हुआ वह रंगभूमि में जा डटा। देव और असुरों का संग्राम छिड़ गया। तारक ने अपने बाणों से आकाश पर एक छत-सी बना दी। उसकी भयंकर गर्जना से देवता काँपने लगे। तारक ने देवताओं पर भांति-भांति के शस्त्रों का प्रयोग किया, जिससे कि देवता भागने लगे। देवताओं को इस प्रकार भागते

देखकर कार्तिकेय ने अपना रथ आगे बढ़ाया और तारक के वेग को रोक दिया।

तारक और कार्तिकेय का युद्ध हुआ। अन्त में कार्तिकेय के तीक्ष्ण बाणों से तारक घायल हो गया और कार्तिकेय की शक्ति का प्रहार न सहकर तारक का मृत शरीर नीचे गिर पड़ा।

आकाश देवताओं के जय-जयकारों से गूंज उठा। उस विशालकाय राक्षस का शरीर पृथ्वी पर इस तरह पड़ा था मानो प्रलय की आँधी से टूटा कोई पर्वत शिखर हो! देवताओं ने कार्तिकेय को घेर लिया और बार-बार उनकी स्तुति करने लगे। देवराज इन्द्र फिर अपने इन्द्रासन पर विराजमान हो गए।

Kishan Lal Tanwar

मेघदूत

: १ :

यक्षराज कुबेर की राजधानी का नाम अलकापुरी था। अलकापुर निवासी इन यक्षों के चरणों में स्वर्ग के समस्त ऐश्वर्य लोटते थे। अपार धन था। अनुपम सौन्दर्य था। कभी न नष्ट होने वाला यौवन था। प्रकृति प्रत्येक ऋतु में नित नए सुखों की वर्षा करती थी। रहने के लिये बहुमूल्य मणियों से जड़े महल और जीवन को मस्ती देने के लिए सोमरस था। फिर भला वहाँ दुःख, शोक और विरह कैसे होते? चिन्तायें किसी को छू नहीं गई थीं। सब सुखी थे, इसलिये सबके जीवन विलासी हो गये थे। राग रंग, नृत्य, संगीत और विहार ही उनकी दिनचर्या थी!

इसी अलकापुरी में एक यक्ष रहता था। कुबेर के उद्यान में उसकी नियुक्ति थी। सूर्य के उदय होते ही महाराज की सेवा में कमल-पुष्प पहुँचाना उसका काम था। यक्ष अपनी पत्नी से अत्यधिक प्रेम करता था। विलासी होने कारण वह प्रातःकाल विलम्ब से उठता। इसीलिये वह रात्रि को ही फूल तोड़कर रखने

लगा। प्रातः उसे फूल न तोड़ने पड़ते और वह वासे फूल ही महाराज कुबेर के पास ले जाता।

एक दिन किसी फूल में भौंरा सोता रह गया। प्रमाद वश यक्ष ने इस ओर ध्यान नहीं दिया था। फूल से निकल कर उस भौंरे ने कुबेर के हाथ पर काट लिया। इसी विषय पर पूँछ-ताँछ करने पर यक्ष को सब बातें सच सच बतानी पड़ीं। क्रुद्ध होकर कुबेर ने यक्ष को एक वर्ष के लिए अकेले ही अलकापुरी त्याग देने की आज्ञा दी।

बेचारा यक्ष अलकापुरी से चल दिया। रामगिरि नामक पर्वत पर उसने अपना निवास बनाया। पर्वत की छटा अवर्णनीय थी। वहाँ अनेक मनोहर और पवित्र कुण्ड थे। वनवास के समय वहाँ सीतादेवी ने श्रीराम के साथ निवास किया था। वह शान्ति पूर्ण स्थान था, पर फिर भी यक्ष का मन शान्ति नहीं पाता था। अपने बीते हुए सुखी जीवन को याद करके यक्ष क्षीण होने लगा। उसे वहां रहते कई मास बीत गए। वर्षाऋतु प्रारम्भ हो गई। चारों ओर से घुमड़-घुमड़ कर बादल आकाश पर छाने लगे। अपनी प्रिया की याद करके यक्ष की आँखें भर आईं। पर किसी प्रकार उनको रोक

कर वह एकटक बादलों को देखने लगा और कुछ विचारने लगा।

सावन मास का प्रथम दिन था। यक्ष ने अपने हाथ में कुटज पुष्प लिये, जल लिया और मेघों को अतिथि बनाकर उनका स्वागत किया। वह भूल गया कि मेघ धुआं, पानी, धूप और वायु मात्र हैं। उसे मेघ भी एक सशरीर इन्द्रियवान प्राणी लगा। उत्कंठित हो यक्ष मेघ से बोला—

हे मेघ! तुम कितने कुलीन हो। पुष्कर और आवर्तक नाम के मेघों के महाकुल में तुमने जन्म लिया हैं। मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। इस समय मैं एकाकी अपने परिवार के दूर इस पर्वत पर मारा-मारा फिर रहा हूँ। अब तुम्हीं मेरे साथी हो। अपने दिल का दर्द मैं तुमसे न कहूँ तो किससे कहूँ?

हे मित्र! मैं अलकापुर निवासी यक्ष हूँ! यक्षराज कुबेर ने मुझे एक वर्ष के लिये देश निष्कासन दिया है। इस समय मुझे रह-रहकर अपनी प्रिय पत्नी का स्मरण हो रहा है। तुम संतप्त जनों को शान्ति देने वाले हो, मेरा सन्देश मेरी प्रिया तक पहुँचा दो। मैं तुम्हें अलकापुरी तक जाने का मार्ग भली भाँति समझा दूँगा। इस

लगातार तुम्हें मार्ग में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होगी ।

प्रिय सुहृद् ! जब तुम यहाँ से घुमड़ते हुए गर्ज कर आकाश मार्ग से चलोगे तो तुम्हें भाँति-भाँति के दृश्य देखने को मिलेंगे । विदेश गए पथिकों की स्त्रियाँ मुख पर आई लटों को हटाकर तुम्हें देखेंगी और प्रिय पति के आने की आशा से प्रसन्न होंगी । बगुलियाँ आपस में होड़ लगाकर तुम्हें पाने के लिये उड़ेंगी । तुम्हें देखकर प्रिय-मिलन की इच्छा को रोक लेने की किसमें सामर्थ्य है ? इतना होते हुए भी तुम एक बात ध्यान से सुनो । तुम मेरे सन्देशवाहक बनकर एक शुभ कार्य करना चाहते हो ! प्रकृति का नियम है कि प्रत्येक शुभ कार्य में विघ्न आया करते हैं ! तुम्हारे मार्ग में भी स्थान-स्थान पर बाधायें आएंगी । तुम्हें उड़ता देखकर भोली-भाली किसान बालाओं को वायु में उड़ते हुए पर्वतशिखर का भ्रम हो जाएगा ! तुम अपनी वर्षा से सूखे खेतों को भी हरा भरा बना देते हो ! इसीलिए ग्राम-बधूटियाँ तुम्हें देखकर प्रसन्न होंगी । वे तुम्हें अपने चंचल और प्रेमाश्रुओं से भरे हुए नयनों

में भर लेंगी । तुम कहीं उन चितवनों के लोभ में मार्ग में ही न ठहर जाना, मेरा सन्देश देना न भूल जाना ।

हे वारिद ! अब मैं तुम्हे यहाँ से अलकापुरी तक का मार्ग बताता हूँ । तुम मेरे कहे अनुसार असानी से स्थान-स्थान पर विश्राम करते हुए और मनोहर दृश्यों से अपनी आँखें तृप्त करते हुए अलकापुरी पहुँच जाओगे । अलकापुरी यहाँ से उत्तर की ओर स्थित है । यहाँ से चलते ही तुम्हें कुछ समय बाद विन्ध्याचल के दर्शन होंगे । तुम लोकोपकारी हो, अतः वह महापर्वत तुम्हें अवश्य विश्राम देगा । तुम वहाँ कुछ समय विश्राम लेना, अपने शीतल वर्षा-कणों से विन्ध्याचल की भूमि को सींचना । अब तुम्हारा बोझ कुछ कम हो जाएगा । पर तुम्हें प्यास भी लगेगी ! विन्ध्याचल ऐसा नहीं जो अतिथि के लिए जल भी न दे सके । इस पर्वत पर नर्मदा नाम की नदी बहती है, तुम उसके स्वच्छ जल से अपनी प्यास बुझाना । तब दक्षिण देशों के घने जंगलों को पार करते हुए तुम विदिशा नाम की राजधानी में पहुँच जाना। क्षणभर के लिए तुम विदिशा का भी आतिथ्य स्वीकार करना । तुम रसिक हो, अतः भ्रूचंचल मुख के समान चपल तरंगों वाली वहाँ की वेत्रवती नाम

की नदी का तुम रसपान करना। पास ही निचले नाम का पर्वत है। तुम वहाँ विश्राम भी कर सकते हो। निचले पर्वत पर अनेक वन नदियाँ हैं। उनके तटों पर फूल चुनने वाली युवतियाँ तुम्हें थकी हुई दिखाई देंगी। उनके कानों में लगे कमल कपोलों का पसीना पोंछने के कारण कुम्हला गए होंगे। ऐसी दशा में तुम उनके मुख पर अपनी शीतल छाया करना। वहां से कुछ ही दूरी पर उज्जयिनी नाम की नगरी है। नगरी के ऊपर जा-कर जब तुम अपनी बिजली चमकाओगे तो उसकी चमक से उज्जयिनी निवासिनी युवतियाँ अपनी चकाचौंध आँखों से तुम्हें निहारेंगी। उस समय यदि तुमने उन नयनों की चंचलता न देखी तो समझना कि तुम जीवन में ठगे गये। कुछ पा न सके। तुम उस उज्जयिनी पर अवश्य जल की वर्षा करना। फिर प्यास लगने पर तुम्हें आस-पास जल के लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ेगा। पास ही निविन्ध्या नाम की नदी बहती है। उसका अथाह जल पीकर तुम्हारी तृप्ति हो जाएगी। उज्जयिनी की नारियाँ महलों में धूप जगाकर अपने कोमल केश सुखाती हैं। उनके महलों से निकला वह सुगन्धित धुआँ तुम्हें और पुष्ट करेगा, बल देगा। उन सुन्दरियों के राग-रञ्जित

चरण-कमलों के चिन्ह देखकर ही तुम्हारी सारी थकान दूर हो जायेगी। सायं समय उज्जयिनी में नृत्य होता है। नगर बन्धुओं की करधनियाँ बज उठती हैं। चंवर हिलाते-हिलाते दासियों के हाथ थक जाते हैं। तब वे शान्त होकर तुम्हारे दर्शनों की आशा से आकाश की ओर देखती हैं। तुम ऐसे समय में उन पर अपने अमृत सम सुखदायी जलकणों की वर्षा करके उन्हें सुख देना। तब वे प्रसन्न होकर तुम पर अपने लम्बे-लम्बे चितवन चलायेंगी।

हे विरही के दूत! तुम रात्रिभर वहाँ विश्राम करने के उपरान्त फिर चल देना। पर मेरी एक बात ध्यान में रखना। रात्रिभर वियोग सहने वाली प्रिया के आँसू जिस प्रकार प्रातःकाल उसका प्रियतम आकर पोछता है, उसी प्रकार रात्रि भर वियोग में आँसू बहाने वाली कमलिनी के ओस रूपी आँसू सूर्य अपनी कोमल किरणों से पोछ रहा होगा। कहीं तुम उस समय सूर्य के सामने आकर उसके हाथों को कमलिनी तक पहुँचने से रोक न देना। इस प्रकार सूर्य को तुम पर क्रोध आजायेगा। तुम शान्त होकर बिना किसी के कार्य में बाधा पहुँचाए आगे बढ़ते जाना। आगे तुम्हें गम्भीरा

नामक नदी मिलेगी। तत्पश्चात् चर्मवती नाम की नदी मिलेगी। उसे पार कर तुम दशपुर पहुँच जाना। वहाँ से ब्रह्मावर्त नगर होते हुए तुम कुरुक्षेत्र पहुँचना। कुरुक्षेत्र ही वह स्थान है जहाँ कि तुम्हारी वर्षा के ही समान तीव्रगति से गाण्डीवधारी अर्जुन ने अपने बाणों की वर्षा की थी। फिर तुम्हें सरस्वती नदी मिलेगी। कौरव-पाण्डवों के युद्ध से मुँह मोड़कर, रेवती के कर कमलों की प्रिय हाला त्यागकर वीर बलराम इसी रसवती का जलपान करने के लिए इस के तट पर जा विराजे थे।

हे अन्यन्य मित्र ! यहाँ से आगे बढ़ने पर तुम्हें कनखल के पास हिमालय से अबाध गति में बहकर आने वाली गंगा जी के दर्शन होंगे। तुम देखोगे कि वह दृश्य कितना सुन्दर है। ऐसा लगता है मानो पार्वती के क्रुद्ध-मुख की ओर अपनी कोमल मुस्कान छोड़ती हुई गंगा, ने अपने चंचल तरंग-करों से शिवजी की जटा पकड़ रखी है। गंगा के उस स्वच्छ जल में जब तुम्हारा श्याम प्रतिबिम्ब पड़ेगा तो लोगों को गंगा- यमुना संगम का भ्रम होजाएगा। तब तुम हिमालय पर चढ़ जाना। शिवप्रेम में विह्वल किन्नरियां वहां मधुर तार-स्वर से

उनकी स्तुति करती हैं। हे मित्र ! जब तुम्हारा गर्जन हिमालय की गुहाओं में गूंजेगा तो उसकी प्रतिध्वनि मृदंग-वादन के तुल्य होगी। निश्चय ही ऐसी दशा में किन्नरियों की उस शंकर-स्तुति की शोभा बढ़ेगी, उसमें रंग जम जाएगा। तुम कुछ ही और आगे बढ़ोगे तो तुम्हें क्रौंचपर्वत का वह खण्डित प्रदेश दिखाई देगा, जिसे कि पहाड़ फोड़कर महाबली परशुराम ने बनाया था। वह उनके पराक्रम का चिह्न है।

हे मित्र ! हिमालय पर्वत के शिखर पर महाराज शंकर स्वयं पार्वती के साथ भ्रमण कर रहे होंगे। तुम उस समय अपने जल को बरफ के समान जमाकर उनके लिए सीढ़ियाँ बना देना। उस कैलाश पर्वत की शोभा अनुपम है। तुम कभी वहाँ के कमल-पूरित सरोवरों का जल पीना, कभी स्वयं रेशम के वस्त्र की भाँति इन्द्र के सेवक ऐरावत के गण्डस्थल पर लिपट जाना, और कभी नर्तकी के महीन रेशमी दुपट्टे की भाँति कल्पवृक्ष के पत्तों को हवा में झकझोरना।

वहीं कैलाश की गोद में रोमाञ्चित प्रेयसी के समान मेरी अलका नगरी स्थित है।

: २ :

अलकापुरी तक का मार्ग बताने के बाद यक्ष मेध को अलकापुरी का परिचय देने लगा। वह बोला—प्रिय सुहृद्! अलकापुरी में कई ऐसी विशेषताएँ हैं जो तुम्हारे गुणों से मेल खाती हैं। यदि तुममें बिजली की चमक है तो अलकापुरी में छबीली कामिनियाँ हैं। तुम कभी-कभी इन्द्रधनुष से अपनी शोभा बढ़ाते हो तो अलकापुरी के महलों में बने रंग-बिरंगे चित्र उनकी शोभा बढ़ाते हैं। तुम गम्भीर गर्जना करते हो तो अलकापुरी में भी स्थान-स्थान पर मृदंग बजा करते हैं। तुम्हारा आकाश में वास है तो अलकापुरी के महल गगनचुम्बी हैं। अपने जैसे कई गुणों के कारण तुम्हें अलकापुरी अधिक प्रिय होगी। उसका अतुल वैभव तुम्हारे आकर्षण का केन्द्र होगा। तुम देखोगे कि वहाँ के बालक बहुमूल्य मरकत मणियों को पहले तो बालू में छिपा देते हैं फिर खोजा करते हैं। उनके खेलने के साधन भी प्रायः इतने मूल्यवान होते हैं कि संसारी लोग उसे सुनकर आश्चर्य करते हैं।

हे मित्र! तुम अकेले और पहली बार अलकापुरी नहीं जा रहे। तुम्हारे कई साथी तो वहाँ सदा घूमा

करते हैं। वायु के झोंकों से वे खिड़कियों द्वारा गगनचुम्बी महलों में घुस जाते हैं और दीवारों पर बने रंगीन चित्रों को खराब करके अपराधी की तरह न जाने कब देखते-देखते ही वहां की दूसरी खिड़कियों से निकल जाते हैं। तुम केवल यही न समझो कि तुम्हीं पानी बरसाते हो। रात्रि को जब अलकापुरी के चन्द्रकान्त-मणियों से जड़े महलों पर चन्द्र की किरणें पड़ती हैं तो वे महल तुम्हारी ही भाँति जल बरसाने लगते हैं। वहाँ के मार्ग अधिक भीड़ के कारण कामिनियों के घुँघराले केशों से गिरे हुए मन्दार-पुष्पों से, कर्णाभरणों से, बालों में गुथे मोतियों से और हारों से सदा भरे रहते हैं। प्रकृति से वहाँ के निवासियों को बड़ा प्रेम है। वे पुष्प-पराग से शरीर को सजाते हैं। चरणों में लगाने के लिए वे कल्पवृक्ष से महावर लेते हैं।

हे जलधर! उसी अलकापुरी के मध्य में कुबेर का महल है। कुबेर के महल से उत्तर दिशा की ओर मेरा घर है। मेरे घर पर इन्द्रधनुष के समान रंग वाला सुन्दर द्वार है। घर की एक ओर मन्दार का एक छोटा-सा वृक्ष है जिसे कि मेरी पत्नी ने पुत्र के समान प्यार से पाला है। उसी मेरे घर में एक बावली भी है।

उसमें उतरने की सीढ़ियों पर पन्ने की सिलें पड़ी हैं। बावली में सुवर्ण के रँग के कमल सदा खिले रहते हैं। उसमें रहने वाले राजहंस वर्षाऋतु में भी मानसरोवर नहीं जाते। उसी बावड़ी के एक ओर एक छोटा-सा पर्वत बना रखा है। उस पर्वत की चोटी पर नीलमणियाँ जड़ी हैं। पर्वत की चोटी के चारों ओर केले के वृक्ष लगे हैं। केलों का यह झुण्ड देखने योग्य है। हे मेघ! तुम्हारी गर्जना सुनकर मेरा मन काँपने-सा लगता है। उस समय मुझे रह-रहकर वह पर्वत याद आ जाता है। हम उस पर क्रीड़ाएँ किया करते थे। मेरी प्यारी पत्नी को तो वह बहुत ही प्यारा है। उसी क्रीड़ाशैल में अशोक और मौलसिरी के वृक्ष भी हैं। इन वृक्षों के बीच में विश्राम करने के लिए हमने मरकत-मणियों से एक सुन्दर स्थान बनाया है। वहीं बैठकर मेरी पत्नी प्रायः नीलकंठ मोर को अपने हाथों को बजाकर उसी ताल पर नचाया करती थी।

हे महात्मन्! इन चिन्हों से तुम आसानी से मेरे घर को पहचान लोगे। पर स्मरण रखो, जैसा मैंने कहा है, उसे समझो, वह मेरे वियोग में उतना सुन्दर नहीं होगा। तुम भली भाँति विश्वास करके मेरे उस

महल में जाकर छिपकर बैठ रहना। तब मेरी पत्नी तुम्हें दिखाई देगी। उसका छरहरा शरीर है। अभी वह नवयौवना है। मोतियों से चमकने वाले उसके नुकीले दाँत हैं। पके हुए कुन्दरू के फल के समान उसके अधर हैं। कमर में पहनी करधनी के भार से वह अलसाती हुई चलती है। अपने सुदृढ़ वक्ष के भार से वह झुककर चलती है। उसकी सुन्दरता देख कर ऐसा भान होता है मानो ब्रह्मा ने अलकापुरी में जितनी भी कामिनियाँ उत्पन्न की हैं, सबसे पहले उसे ही बनाया था। परन्तु अब वह मेरे विरह में ऐसी हो रही होगी मानो पाले की मारी हुई कमलिनी हो। लगातार रोने से उसके नेत्र सूझ गये होंगे। गर्म सांसों के चलने से उसके ओठ झुलस गए होंगे। उसके केश उलझे होंगे। खिले कमल सा मुंह अब पीला पड़ गया होगा। वह अपना केशों से घिरा, मुरझाया हुआ वह पीला मुख अपनी हथेली पर रखे बैठी होगी। सच कहता हूं, उस समय वह ऐसी दीखती होगी जैसा कि तुमसे घिर जाने पर चाँद दीखता है। हे दूत! मेरी पत्नी या तो देवता की पूजा में तन्मय दीखेगी या वह पिंजड़े में मैना से पूछती होगी—ओ रसिके! क्या तुझे

भी मेरी ही भाँति उनकी याद आती है। तू तो उनकी प्यारी है।

हे मित्र ! मेरी प्यारी को वीणावादन में अति रुचि है। तुम देखोगे, वह गोद में वीणा लेकर अपनी निजी स्वरलहरी पर बजाने की कोशिश करती होगी। पर क्या वह ऐसा कर सकती होगी ? क्या वह स्वरलहरी उसे स्मरण होगी ? मुझे तो इस पर विश्वास नहीं होता। हे श्रद्धेय ! तुम उसे किसी कार्य में, अथवा मेरे चिन्तन में व्यस्त होने पर मेरा सन्देश न कहना। हो सकता है वह किसी प्रकार अपना मन बहला रही हो। परन्तु तुम रात्रि को, जब कि वह मेरी याद आने से पृथ्वी पर लेटी करवटें बदल रही हो तो मेरा सन्देश कह सुनाना। उस समय मुझे निश्चय है कि उसकी वह दीन-दशा देखकर तुम्हारे आँसू अवश्य निकल पड़ेंगे। पर अपने पर संयम रखना। उसे अपना परिचय देते हुए कहना, हे सुहागिनि ! मैं तुम्हारे पति का मित्र हूँ। मैं मेघ हूँ। तुम्हारे पति का सन्देश लेकर आया हूँ।

हे मित्र ! ज्यूंही तुम इतना कहोगे, वह उसी प्रकार प्रसन्न होकर तुम्हारी ओर मुँह उठाकर देखेगी, जैसे कि हनुमान जी की ओर सीता जी ने देखा था। तब हे

मित्र ! तुम उससे कहना--हे सुकुमारि ! यक्ष के शाप के कारण रामगिरी में निवास करने वाला तुम्हारा पति जीवित है। तुम्हारे वियोग में उसका क्षीण वदन फीका पड़ गया है। वह अपने मन को सन्तोष देने के लिए तुम्हारी कुशलता का समाचार चाहता है। वह तुम्हारे दर्शनों को अधिक उत्कंठित है। परन्तु जो कुछ हो रहा है उसे टाला भी नहीं जा सकता। विधि का विधान सदा अटल होता है। उसे अब केवल तुम्हारी याद का ही सहारा है। अतः अकेला वह अब इसी प्रकार अपना मन बहलाया करता है। सुभगी ! तुम दोनों की एक-सी ही दशा है। वह तुम्हारे विरह में उधर क्षीण हो रहा है और तुम उसके विरह में सूखती जा रही हो। उसके नयन सदा मेरी ही भांति बरसा करते हैं। वह तुम्हारे वियोग में लम्बी साँसे भरता है और तुम भी उसके विरह में निश्वास लेती हो। तुम्हारी सुन्दरता के वह सदा गीत गाता रहता है। वह कहता है —हे प्रिये ! लता में तुम्हारे शरीर की कोमलता, हरिणियों के चकित नेत्रों में तुम्हारे नेत्रों के कटाक्ष, चन्द्रमा में तुम्हारे मुख की कान्ति, मोरपंखों में तुम्हारे केशों की समता और नदी की चञ्चल लहरों में तुम्हारे भौंहों

की चञ्चलता देखता हूँ। पर हा, किसी एक स्थान पर मैं तुम्हारी समस्त छवि के दर्शन नहीं कर पाता। जब कभी मुझे तुम्हारा अधिक स्मरण हो आता है तब मैं गेरु के रंग से शिला पर तुम्हारा चित्र अंकित करता हूँ। साथ ही मैं अपना चित्र भी वहीं बनाना चाहता हूँ। पर दुर्भाग्य ! विधाता को चित्र में भी हम दोनों का मिलन नहीं सुहाता। जब मैं अपना चित्र बनाने लगता हूँ, दिल भर आता है और आँखों से आँसू बरसने लगते हैं। ऐसे में भला चित्र कैसे बनाऊँ ?

प्राणप्रिये ! जैसे-तैसे मैं चित्त को धैर्य देकर अपने प्राणों को सम्हाले बैठा हूँ। तुम भी धैर्य न खोना। जिस प्रकार भी हो ये दिन तो व्यतीत करने ही हैं। विधाता की सृष्टि में ऐसा कौन है जिसके सब दिन समान रहते हों। जिसे सुख ही सुख मिलता हो, जिसके जीवन में वियोग न आता हो ? सबका भाग्य रथ के पहिए के समान घूमता रहता है। कभी भाग्य सुखी बनाता है तो कभी दुःखी भी बना देता है। अब केवल चार मास शेष रह गए हैं। इनको आंख मीच कर बिता दो। इस विरह के बाद जब हम फिर से कार्तिक मास की चाँदी सी उजली रातों में

मिलेंगे तब के सुख का वर्णन नहीं किया जा सकता।

इतना कह कर यक्ष ने मेघ को नमस्कार किया और कहा--हे मित्र ! क्या तुमने मेरा यह सन्देश प्रियतमा तक पहुँचाना स्वीकार कर लिया है। मुझे तुम्हारे उत्तर की प्रतीक्षा नहीं, क्योंकि महान् लोगों से प्रार्थना करना ही पर्याप्त होता है। तुम तो बिना गरजे ही प्यासे चातक की प्यास मिटाते हो। महान् लोगों के ये स्वाभाविक गुण हैं। मेरा तुम से पुनः निवेदन है कि मुझ विरही पर दया करके तुम अवश्य मेरा यह सन्देश मेरी प्यारी तक ले जाओ। मैं तुम्हारे इस उपकार का कभी भी बदला नहीं चुका सकूँगा। परन्तु फिर भी मैं भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि तुम्हारा भी कभी अपनी प्रियतमा बिजली से वियोग न हो। वियोग सहना अति दुष्कर है, यह तुम्हें कभी न सहना पड़े।

This story is very best. Standard